❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

तः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

# भागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बन्धनकर ॥

वर्ष १ | गौराब्द ४६९, मास—माधव १७, वार—सङ्कर्षण सोमवार, ३० माघ, सम्वत् २०१२, १३ फरवरी १९५६ | संख्या ९

## श्रीश्रीमद्गौरकिशोरनमस्कारदशकम्

[त्रिदण्डिस्वामि-श्रीमद्भक्तिरक्षक-श्रीधर-महाराज-कृतम्]

गुरोर्गुरो मे परमो गुरुस्त्वं वरेण्य ! गौराङ्गगणाग्रगण्ये ।
प्रसीद भृत्ये दयिताश्रिते ते नमो नमो गौरकिशोर तुभ्यम् ॥१॥

सरस्वतीनाम-जगत्प्रसिद्धं प्रभुं जगत्यां पतितैकबन्धुम् ।
त्वमेव देव ! प्रकटीचकार नमो नमो गौरकिशोर तुभ्यम् ॥२॥

हे [illegible] के गुरो ! मेरे परम गुरुदेव, तुम श्रीगौरांगके प्रियजनोंके अग्रगण्य समाजमें [illegible] वरे[illegible] हो । तुम्हारे दयितदासके आश्रित इस भृत्यके प्रति प्रसन्न होओ । हे गौरकिशोर ! तुमको [illegible]बार नमस्कार है ॥१॥

हे देव ! इस जगत्में पतितोंके एकमात्र बन्धु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती नामक संसार भर[illegible] प्रसिद्ध प्रभुको तुमने ही प्रकाशित किया है । हे गौरकिशोर ! तुमको बारंबार नम[illegible]र है ॥२॥

क्वचिद्व्रजारण्यविविक्तवासी
हृदि व्रजद्वन्द्वरहो-विलासी ।
बहिर्विरागी त्ववधूतवेषी
नमो नमो गौरकिशोर तुभ्यम् ॥३

तुम कभी व्रजधाममें एकान्तमें वास कर व्रजकिशोर युगलके परमगोपनीय विलासपरायण हो, किन्तु बाहरमें कभी तो वैराग्य-विधि पालन करते हो और कभी अवधूत वेष ग्रहण करते हो। हे गौरकिशोर ! तुमको बारंबार नमस्कार है ॥३॥

क्वचित् पुनर्गौरवनान्तचारी
सुरापगातीररजोविहारी ।
पवित्रकौपीनकरङ्कधारी
नमो नमो गौरकिशोर तुभ्यम् ॥४॥

कभी तो तुम श्रीगौरसुन्दरकी क्रीड़ा-स्थलियोंसे युक्त वनमें विचरण करते हो—गङ्गा-तटकी सैकत भूमिपर भ्रमण करते हो। पवित्र कौपीन और करङ्क (जलपात्र) को धारण करनेवाले हे गौरकिशोर ! तुमको बारंबार नमस्कार है ॥४॥

सदा हरेर्नाम मुदा रटन्तं
गृहे गृहे मधुकरीमटन्तम् ।
नमन्ति देवा अपि यं महान्तं
नमो नमो गौरकिशोर तुभ्यम् ॥५॥

सर्वदा परम सुखमें मग्न होकर श्रीहरिनामका गानकरने वाले तथा घर घरमें मधुकरी (मधुकर जैसे प्रत्येक फूलसे थोड़ा थोड़ा मधु संग्रह करता है वैसी) भिक्षाको ग्रहण करने वाले जिस महापुरुषको देवता लोगभी नमस्कार किया करते हैं—हे गौरकिशोर ! तुमको बारंबार नमस्कार है ॥५॥

क्वचिद्रुदन्तञ्च हसन्नटन्तं
निजेष्टदेवप्रणयाभिभूतम् ।
नमन्ति गायन्तमलं जना त्वां
नमो नमो गौरकिशोर तुभ्यम् ॥६॥

अपने इष्टदेवताके प्रणयमें मत्त होकर कभी नृत्य करनेवाले, कभी रोनेवाले, कभी हँसनेवाले तथा कभी उच्च स्वरसे गान करनेवाले तुमको सभी लोग नमस्कार किया करते हैं। हे गौरकिशोर ! तुमको बारंबार नमस्कार है ॥६॥

महायशोभक्तिविनोदबन्धो !
महाप्रभुप्रेमसुधैकसिन्धो ।
अहो जगन्नाथदयास्पदेन्दो !
नमो नमो गौरकिशोर तुभ्यम् ॥७॥

हे महायश ! हे ठाकुर भक्तिविनोदके बन्धो ! हे महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवके एकमात्र प्रेमामृतके सिन्धो ! हे वैष्णव सार्वभौम श्रीजगन्नाथके कृपापात्र चन्द्र ! हे गौरकिशोर ! तुमको बारंबार नमस्कार है ॥७॥

समाप्य राधाव्रतमुत्तमं त्व-
मवाप्य दामोदरजागराहम् ।
गतोऽसि राधादरसख्यरिद्धं
नमो नमो गौरकिशोर तुभ्यम् ॥८॥

परम उत्तम उर्ज्जव्रतका उद्यापन कर श्रीदामोदरके उत्थान (आरंभ) दिनका अवलम्बन कर तुम श्रीराधिकाजीके प्रिय सखीत्व रूपी धनको प्राप्त हुए हो। हे गौरकिशोर ! तुमको बारंबार नमस्कार है ॥८॥

विहाय संगं कुलियालयानां
प्रगृह्य सेवां दयितानुगस्य ।
विभासि मायापुरमन्दिरस्थो
नमो नमो गौरकिशोर तुभ्यम् ॥९॥

कुलिया नगरके (आधुनिक नवद्वीप) निवासियोंका संग परित्याग कर अपने अनुगत श्रीदयितदासकी (श्रीलभक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुरकी) सेवा स्वीकारपूर्वक श्रीधाम मायापुरके मन्दिरमें तुम विराजमान हो। हे गौरकिशोर ! तुमको बारंबार नमस्कार है ॥९॥

सदा निमग्नोऽप्यपराधपङ्के
ह्यहैतुकीमेष कृपाञ्च याचे।
दयां समुद्धृत्य विधेहि दीनं
नमो नमो गौरकिशोर तुभ्यम् ॥१०॥

सर्वदा अपराध-पंकमें निमज्जित यह दास (रचयिता) तुम्हारी अहैतुकी कृपाके लिए प्रार्थना कर रहा है। इस दीन व्यक्तिको उद्धार कर दया करो। हे गौरकिशोर! तुमको बारंबार नमस्कार है।

---

# वैष्णव-दर्शन

## दर्शन शब्दका अर्थ; यह आँखोंका कार्य है

द्रष्टा अर्थात् देखने वालेका दृश्य-वस्तुके साथ सम्बन्ध स्थापनको दर्शन कहते हैं। साधारणतया जिस इन्द्रियकी सहायतासे द्रष्टा किसी वस्तुको देखता है, उसे आँख कहते हैं। आँखके द्वारा वस्तुके बाहरी आकार और रूप आदिकी अनुभूति होती है। किसी भी वस्तुका बाह्य-ज्ञान प्राप्त करनेके लिये आँख नामक ज्ञानेन्द्रियकी सहायता आवश्यक होती है। किन्तु केवल आँख रहनेसे ही दर्शनका कार्य सम्पन्न नहीं होता। आँखोंके कार्य करनेकी पृष्ठ-भूमिमें उसके कारण रूपमें—आँखोंके चालक रूपमें एक दूसरी बाह्य-इन्द्रियका अधिष्ठान भी हम लक्ष्य करते हैं। यह द्वितीय इन्द्रिय समस्त इन्द्रियोंकी चालक है, इसे मन कहते हैं। आँखें दर्शन क्रियाका कारण होनेपर भी उनके भी कारणके रूपमें मनकी सत्ता अवश्य स्वीकार्य है, अथवा यों कहिये—आँखोंके वर्त्तमान रहनेपर भी जबतक मनकी क्रियाका उन्हें सहयोग प्राप्त नहीं होता, तबतक देखनेकी क्रिया सम्पन्न नहीं होती है।

## मन किसे कहते हैं? तथा उसके साथ अन्यान्य इन्द्रियोंका सम्बन्ध

आँखोंके सामने दृश्य वर्त्तमान रहनेपर भी जिसके कर्त्तृत्वके अभावमें आँखें कार्य नहीं कर सकतीं—देख नहीं सकतीं, उसे मन कहते हैं। मन केवल आँखोंका ही परिचालक नहीं है अपितु आँखोंकी तरह और भी चार ज्ञानेन्द्रियोंका भी प्रभु है। मन इन्हीं इन्द्रियोंकी सहायतासे वस्तुके विषयमें नाना प्रकारकी अनुभूतियाँ संग्रह करता है। वस्तुका बाह्य आकार और रूप आदि नहीं रहनेसे अथवा क्षुद्रत्व, बृहत्व, आवृत होनेके कारण अथवा सुदूर जन्य सत्ता वर्त्तमान रहनेपर भी बहुधा बाह्य-वस्तु दृष्टिगोचर नहीं होती।

## इन्द्रियोंके द्वारा उत्पन्न प्रत्यक्ष-ज्ञान और मानस-ज्ञान

बाह्य वस्तुकी सत्ता अन्यान्य चार ज्ञान-इन्द्रियोंकी सहायतासे भी उपलब्ध हो सकती है। ज्ञान-संग्रहके लिये उपयोगी इन्द्रियोंकी सहायतासे इन्द्रियोंका अधिपति मन उन वस्तुओंकी भी धारणा करनेमें समर्थ होता है, जिनकी धारणा दूसरी इन्द्रियाँ स्वतन्त्ररूपसे करनेमें असमर्थ होतीं हैं। विशेषतः ज्ञान-इन्द्रियाँ भी जिस अनुभवको अनुभूत करनेमें असमर्थ होती हैं, उसे भी करण-समष्टिके बलसे मन प्रत्यक्षके मार्गको छोड़ कर अनुमानके जरिये प्राप्त कर लेता है। यद्यपि दर्शन आदि प्रत्यक्ष ही स्वानुभवके पथ हैं, फिर भी अनुमिति (अनुमान) निर्दोष रहनेपर प्रत्यक्षकी सहायता करती है। प्रत्यक्ष सर्वदा ही निर्भर योग्य होता है—ऐसा नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि यह भी कभी-कभी सत्यकी उपेक्षा कर वस्तुकी सत्य अनुभूति प्रदान करनेके बदले भ्रान्त अनुभूति देकर मनको वञ्चित करता है। मादक द्रव्योंका सेवन करनेसे इन्द्रियोंके द्वारा लब्ध अनुभूति अनेक समय भ्रान्तिका कारण होती है। दर्शन शब्दसे 'देखना' का बोध होनेपर भी अन्यान्य इंद्रियोंके द्वारा गोचरीभूत—लब्ध प्रतीतिको भी दर्शनकी संज्ञा दी गई है।

## जड़-विज्ञान और मनोविज्ञान

जड़ वस्तुकी सत्तामात्रके दर्शनको जड़ विज्ञान कहते हैं और जड़ातीत चेतनमय वस्तु-सत्ताके दर्शनको मनोविज्ञान कहा जाता है । भारतीय दर्शन शास्त्रोंमें अहंकारको मनका कारण, बुद्धि या महत्तत्वको अहंकारका कारण और प्रकृति या अव्यक्त तत्त्वको बुद्धिका कारण निर्देश किया गया है । प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, और मन, अंश-अंशीरूपमें क्रमशः अवस्थित हैं । द्रव्यमें कर्तृसत्ताका अभाव होनेपर उसे द्रष्ट-शक्तिसे रहित जड़ और कर्तृसत्ताका अस्तिव या द्रष्टृत्व होनेपर उसे ही बुद्धि, अहंकार या मन कहा जाता है ।

## प्राचीन छः-दर्शन और परवर्ती दस दर्शन

प्राचीनकालमें भारतमें छः दर्शन विशेष रूपसे प्रसिद्ध हुए हैं । वे हैं—(१) कपिलका सांख्य दर्शन, (२) कणादका वैशेषिक दर्शन, (३) पतञ्जलिका योग दर्शन, (४) गौतमका न्याय दर्शन, (५) जैमिनीका मीमांसा दर्शन और (६) व्यासदेवका वेदान्त दर्शन । इनके अतिरिक्त मध्ययुगमें प्रचलित चार्वाक दर्शन, नकुलीश पाशुपत दर्शन, आर्हत दर्शन, सुगत ( बौद्ध ) दर्शन आदि और भी दस प्रकारके दार्शनिक मतोंका उल्लेख सायनाचार्यके ग्रन्थोंमें मिलता है । किन्तु यहाँ प्रत्येक दर्शनोंके द्वारा स्थापित दार्शनिक विचारोंकी तारतम्यमूलक समीक्षा करना वर्त्तमान लेखका उद्देश्य न होनेके कारण हमने उस विषयकी आलोचना स्थगित रखी है । केवल एक उत्तर मीमांसा या व्यासदेव द्वारा रचित वेदान्तकी प्रारम्भिक आलोचनाकी आवश्यकता है, क्योंकि वेदान्त दर्शन ही हमारे आरम्भ किये हुए विषयका मूल है ।

## वेदान्त दर्शनका परिचय

वेदोंके शिरोभाग अर्थात् सारभाग उपनिषत्के नामसे परिचित हैं । इन उपनिषदोंका यथार्थ तात्पर्य धारावाहिक रूपमें उपलब्धि करना आसान नहीं अपितु असाध्य है । इन्हीं तात्पर्यों को यथावत् और धारावाहिकरूपमें, सहज और बोधगम्य करनेके उद्देश्यसे उपनिषदोंका ही अवलम्बन कर व्यासदेवने 'ब्रह्मसूत्र' नामक एक ग्रन्थकी रचना की है । वह ग्रन्थ उत्तर मीमांसा, शारीरिक या वेदान्त दर्शनके नामसे प्रसिद्ध है । अन्यान्य दार्शनिकोंके पूर्व-पक्षका खण्डन कर आप्त वाक्योंको ( स्मृति-पुराण और महाजनोंके वाक्योंको ) प्रत्यक्ष और अनुमानका सहोदर जानकर उन्हें प्रमाणरूपसे ग्रहणकर इस मीमांसा दर्शनमें सिद्धान्तोंका साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया गया है । भारतीय वैदिकधर्मकी रूप-रेखा—उसकी रीतियोंका गठन बहुत-कुछ वेदान्त दर्शनके उपर ही अवलम्बित है ।

## वेदान्त या शारीरक सूत्रके विविध भाष्यकार

हम इस शारीरक मीमांसाकी व्याख्या करने वाले-असंख्य भाष्यकारों, टीकाकारों तथा वार्तिककारोंको देख पाते हैं । उनमें कुछ प्राचीन व्याख्याता बोधायन, टङ्क, भारुचि, और द्रमिड़ आदिने विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की । श्रीशंकराचार्य आदि अनेक प्रतिभाशाली व्यक्ति शारीरक-भाष्य आदिकी रचना कर वेदान्ताचार्यके नामसे अलंकृत हैं । परमहंससंहिता श्रीमद्भागवतको भी इस ब्रह्मसूत्रका भाष्य कहा गया है । यादवाचार्य, प्रभाकर, और भास्करभट्ट आदि मनीषियोंने भी वेदान्तके शिक्षक रूपमें कतिपय ग्रन्थों और मतवादोंका प्रचार किया है । श्रीशंकराचार्यके अनुगामी सम्प्रदायमें भी हम आनन्दगिरि, सायनमाधव, आदि द्वारा तथा वाचस्पति मिश्रकी भामती टीका आदिमें हम केवलाद्वैत-मतकी पुष्टि देख पाते हैं ।

## ब्रह्मसूत्रके निर्विशेष और सविशेष भाष्य

ब्रह्म सूत्र या उत्तर मीमांसाका अवलम्बन कर ब्रह्म-वस्तुको निर्विशेष मानने वालोंके द्वारा केवलाद्वैतवादका प्रसार हुआ । इनके अलावा इनसे कुछ शताब्दी पूर्व ब्रह्मके सविशेषवादका विपुल प्रचार करने वाले अनेक प्रतिभासम्पन्न भगवत्परायण आचार्योंका भी उदय हुआ था । ये सविशेष वादी आचार्यवृन्द केवलमात्र खण्ड-दार्शनिक ही नहीं थे, प्रत्युत् सम्बन्ध-ज्ञानयुक्त सिद्धान्त-पारंगत भी थे । सुतरां वस्तु

सम्बन्धित अभिधेय—ब्रह्मप्राप्तिके उपाय तथा प्रयोजन—उपेयरूपी ब्रह्मदर्शनसे भी वे विमुख न थे।

## जड़-वैज्ञानिकोंकी भ्रान्ति

प्राचीन कालमें ज्योतिष शास्त्रविदोंकी धारणा थी कि यह पृथ्वी ही—जिसपर हम वास करते है, इस विश्वका केन्द्र-बिन्दु है और इसे ही केन्द्रकर सूर्य-ग्रह और नक्षत्रादि ज्योतिःपुँज घूम रहे हैं। किन्तु कुछ दिनोंके बाद ही ज्ञानका विकास होनेपर तथा उसकी सूक्ष्मतर आलोचनाके फलस्वरूप उनकी वह धारणा बदल गयी। फिर उन्होंने ही बतलाया कि वस्तुतः हम लोगों को अपने वक्षःस्थलपर धारण करने वाली यह पृथ्वी ही—जो पहले विश्व-ब्रह्माण्डका केन्द्र मानी जाती थी, बुध या शुक्र ग्रहकी तरह शुक्र और कुज ग्रहोंके मध्याकाशमें सूर्यदेवको प्रत्येक सौर वर्षमें एक बार परिभ्रमण करती है। पृथ्वीपर वास करने वाले द्रष्टा अपने स्थानको ही (पृथ्वीको) विश्वका केन्द्र स्थापन कर जैसे भ्रममें पतित हुये थे, जड़ वैज्ञानिक भी उसी प्रकार अपने स्थूल शरीरको ही विषय-भोगोंका केन्द्र समझ कर अपने स्थूल-शरीरके भोक्तृत्वमें या विषयत्वमें विश्वास कर रहे हैं।

## जड़—विज्ञानके उपर मनोविज्ञानका आधिपत्य

मनोवैज्ञानिक जड़—विज्ञानमें भी मनका प्रभुत्व देखकर मनको ही इस जड़ शरीरका केन्द्र मानते हैं, तथा मनको द्रष्टा मानकर मनःचक्षुसे जड़को दृश्य स्थानीय जानकर भली-भाँति दर्शन करते हैं। उनकी यह प्रबल धारणा होती है कि जड़, मनको देख नहीं सकता, बल्कि मन ही जड़का द्रष्टा है। मनन शक्तिके अभावमें जड़ द्रव्योंमें चक्षुका केवल जड़ उपादन मात्र वर्त्तमान होता है, किन्तु दर्शन शक्तिके अभावमें जड़ द्रव्य, मनको या अपनी आँखोंको देखनेमें असमर्थ होता है।

## पूर्व और पश्चिमके मनोवैज्ञानिकोंके विचार भ्रान्तिपूर्ण हैं।

जीवोंके परलोकमें विश्वास न रखने वाले नास्तिक चार्वाक, जड़रसानन्दी एपिक्युरियस, अज्ञेयवादी एग्नष्टिक हास्कले, पारलौकिक विश्वासमें संदेहवादी स्केप्टिक लोग, दिव्यज्ञानवादी हेगल, शोपेनहावर, काण्ट आदि विख्यात प्राचीन दार्शनिकोंने ही नहीं अपितु अनेक भारतीय दार्शनिक मनीषियोंने भी मनोविज्ञानकी या दर्शनशास्त्रकी सेवामें अपना जीवन बिताया है। और जगतको अपनी-अपनी अभिज्ञता दिखलाकर अपने-अपने साम्प्रदायिक दृष्टिकोणसे वस्तुका दर्शन करना सिखलाया है। वे लोग अपनी-अपनी मानस अभिज्ञताओंको अपने विचारधाराका माध्यम बनाकर वस्तुका निर्देश करते हैं। किन्तु भिन्न-भिन्न स्थानोंमें स्थित, विभिन्न दृष्टिकोण सम्पन्न दर्शकोंको वे केवलमात्र नाना-प्रकारके भ्रान्तिपूर्ण चित्रोंका ही प्रदर्शन कर सके हैं। वस्तुतः वे लोग वस्तुका यथार्थ दर्शन न तो स्वयं ही कर सके है और न औरोंको ही कराने में समर्थ हैं।

## जीवोंके अधिकारके अनुसार दार्शनिक-दृष्टि

एक दार्शनिक विचारका अन्य दार्शनिक विचारोंसे विरोध होनेके कारण नाना-प्रकारके परस्पर विरोधी दार्शनिक मतवादोंकी सृष्टि हुई है। उनमें से प्रत्येक दर्शन श्रोतृमण्डलीको अपनी ओर खींचने के लिये आप्राण चेष्टा कर रहा है। श्रोतृमण्डलीमें जिस श्रोता की चित्त-वृत्ति जिस दार्शनिक विचार-धाराके सन्निकट होती है वह उसी तरफ खिंच जाता है और प्राचीन ज्योतिषियोंकी भ्रान्त धारणाकी तरह अपने भ्रान्त विचारके माध्यमसे वस्तुका दर्शन कर भ्रान्त धारणाओंकी ही पुष्टि किया करता है। दार्शनिक मतवादके बाजारमें दर्शक योग्यतानुसार अपनी रुचिके अनुकूल विचार-रूप द्रव्यको ही ग्रहण करता है।

## निर्विशेष मायावादकी भ्रान्ति

जैसे ज्योतिषी लोग प्राचीनकालमें हमारी-पृथ्वीको ही अन्यान्य ग्रह और नक्षत्रोंका केन्द्र भाग मानते थे, जिस प्रकार प्राचीन कालमें मानव अपने शारीरिक आधारको ही समस्त अनुभवोंका केन्द्र समझते थे, उसी प्रकार दार्शनिकोंने भी ज्ञानकी प्राथमिक उड़ानमें

द्रष्टाको ही आत्मा या समस्त वस्तुओंका केन्द्र-स्थल समझना आरम्भ किया। इन्हीं विचारोंके ही परिणाम-स्वरूप वेदान्त दर्शन जैसे शुद्ध दर्शनमें भी अहंग्रहोपासना या मायावाद जैसी मिथ्या कल्पनाका भी आरोप करनेका प्रयास होने लगा। वेदान्त कहनेसे केवलाद्वैतवाद, जीव-ईश्वर ऐक्यवाद, जड़-चिद्-ऐक्य वाद, विवर्त्त-वाद, निःशक्तिकवाद, व्यक्तिरेकवाद-निर्भेद ब्रह्मवाद, निर्विशेषवाद आदि संकीर्ण मतवाद-समूहको ही समझा जाने लगा। इन मतवादों के आपात-मनोरम विचारोंके आवरणसे दर्शन-शास्त्रके जिज्ञासुओंकी आँखें आच्छादित कर दी गईं। इस तरह वे उनके भ्रान्त विचारोंको उदार और विश्व-हितकर जानकर उसी तरफ लुढ़क पड़े।

## शङ्कर-दर्शन सत्यका आच्छादक है

सविशेष अनुभूति तथा विशिष्टाद्वैत, शुद्धद्वैत, शुद्धाद्वैत और द्वैताद्वैत आदि दर्शन-समूह वेदान्तके प्रतिपाद्य नहीं हैं--इसकी प्रतिष्ठाकेलिये संकीर्ण मायावादियोंकी ओरसे असंख्य चेष्टाएँ की गयीं। श्रीशङ्कराचार्यके अभ्युदय कालसे आरम्भकर विद्यारण्यभारतीकी शेष दशा तकके केवलाद्वैत वेदान्तिओं के साम्प्रदायिक ऐतिह्यकी आलोचना करनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि जीवात्माको परमात्मा और जगत्को मिथ्या प्रतिपादन, आंशिक दर्शन या खण्ड-ज्ञानकी सहायतासे पूर्णत्वकी कल्पना, जड़ीय अखण्ड देश काल आदिको पूर्ण-वस्तुके रूपमें प्रतिष्ठा एवं विषय तथा आश्रयके विवेकके अभावमें 'रसो वै सः' वस्तुको नीरस या निर्विशेष स्थापन आदिके प्रयासमें जगत्का समय वृथा ही अतिवाहित हुआ है। वस्तु-दर्शनके मिस आंशिक ज्ञानको पूर्ण-ज्ञान और मिथ्याको सत्य प्रमाणित करनेके लिये इतर कार्योंमें व्याप्त रहनेके कारण परम सत्य-वस्तुका दर्शन आच्छादित किया गया था। यद्यपि श्रीशङ्कराचार्य जैसे प्रमुख दार्शनिक मनिषीवृन्द 'वेदांत' का दर्शनकर जड़ीय भेद-दर्शन-समूहका बड़े समारोहसे खण्डन किया है फिर भी जीवात्माको द्रष्टृ, भोक्तृ या विषय तथा जगत्को दृश्य, आश्रय तथा भोग्य रूपसे प्रतिष्ठा करनेके कारण उनका दर्शन भी सत्यसे बहुत दूर अवस्थित है।

## अपरोक्ष-पथमें वैष्णव दर्शन, और श्रीमद्भागवत दर्शन- शिरोमणि हैं

इसी परम सत्य दर्शनका प्रदर्शन करनेके लिये ही स्वयं-रूप वस्तु स्वयं प्रकाशित हुए थे। इन्हें प्रकाशित होनेके लिये अन्य शक्तियोंके सहयोगकी आवश्यकता नहीं पड़ती। जड़ द्वारा प्रत्यक्ष-पथका अवलम्बन कर अथवा परोक्ष-पथके द्वारा वस्तु-तत्त्व निर्देश करनेके बदले अपरोक्ष-पथकी महिमा केवल वैष्णव-दर्शनमें ही निहित है। श्रीमद्भागवत ही वैष्णव-दर्शन है। श्रीमद्भागवत ही वेदान्त दर्शनकी यथार्थ व्याख्या-स्वरूप सर्वदर्शन शिरोमणि है। इसमें समस्त दार्शनिक तथ्यों का निरूपण विस्तृतरूपमें किया गया है।

## निरपेक्ष सत्यही वैष्णव दर्शन है

सापेक्ष अस्मिता, सापेक्ष कर्मका आश्रय कर, सापेक्ष इन्द्रियोंकी सहायतासे, सापेक्ष वस्तुको निमित्त कर, सापेक्ष वस्तुसे निरपेक्ष रह कर, सापेक्ष वस्तुके सम्बन्धसे, सापेक्ष आधारसे दर्शन करनेसे परम सत्य-वस्तुका दर्शन नहीं हो सकता। द्रष्टा वस्तुका दर्शन करते समय विशेषरूपसे निरपेक्ष नहीं होनेसे वस्तुसे अभिन्न सच्चिदानंद दर्शन करनेसे विमुख हो जायेंगे। जो माया या खण्ड ज्ञानकी प्रतीतिमें वस्तुका दर्शन करनेमें व्यस्त हैं, वे मायावादी वैदांतिक हैं, और जो मायावादियोंकी दासतासे मुक्त होकर वस्तुका दर्शन करते हैं, वे तत्त्वविद् या वैष्णव हैं। वह तत्त्व केवल माया नहीं है, वह है परम अखण्ड सत्य, विशुद्ध पूर्ण चिद् और अनुपादेयता-रहित पूर्ण उपादेय घनानन्दका अद्वय ज्ञान।

(क्रमशः)

—ॐ विष्णुपाद श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती

# विशुद्ध-भजन

## अशुद्ध भाव और अशुद्ध क्रियाका परित्याग नहीं करनेसे विशुद्ध भजन नहीं होता

"पड़िले शुनिले कभु कृष्ण प्राप्ति नय।
भजिले विशुद्ध-भावे तबे कृष्ण पाय॥"

किसी भक्त महाजनकी लेखनीमें यह उपदेश रत्न पाया जाता है। यह उपदेश नितान्त निगूढ़ सत्यमूलक है। बहुतेरे खूब परिश्रम कर भजन साधन करते हैं, किन्तु बहुत परिश्रम करनेपर भी कोई सुफल नहीं दिखलाई पड़ता। भजनका विशुद्ध न होना ही इसका एकमात्र कारण समझ पड़ता है। कृष्ण भजनसे सम्बन्धित समस्त अशुद्ध भाव और क्रियाओंका परित्याग कर भजन करनेसे भजन विशुद्ध होता है। अतएव समस्त अशुद्ध भावों तथा क्रियाओंको विचार-पूर्वक परित्याग करना सभी भजन-प्रिय व्यक्तियोंको आवश्यक है। विशुद्धरूपसे भजन करनेसे शुद्धा भक्ति प्राप्त होती है। और इसी शुद्धा भक्ति द्वारा ही भगवान्‌का चरण-कमल लाभ होता है। इसे छोड़कर किसी भी अन्य उपाय द्वारा भगवत्प्राप्तिकी संभावना नहीं है। श्रीमद्भागवतमें भगवान्‌का स्पष्ट निर्देश है—

भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम्।
(श्रीमद्भा० ११।१४।२१)

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिममोर्जिता॥
(श्रीमद्भा० १२।१४।२०)

—हे उद्धव! योग-साधन, ज्ञान-विज्ञान, धर्मानुष्ठान, जप-पाठ और तप-त्याग मुझे प्राप्त करानेमें उतने समर्थ नहीं हैं जितनी दिनोंदिन बढ़ने वाली अनन्य प्रेममयी मेरी भक्ति। मैं अनन्य श्रद्धा और अनन्य भक्तिसे ही वश में आता हूँ। मुझे प्राप्त करनेका यही एक उपाय है।

## शुद्धा भक्तिके लक्षण

श्रीमद् रूपगोस्वामी शुद्धा भक्तिका लक्षण कहते हैं:-

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥
(भक्तिरसामृतसिंधु)

अर्थात् श्रीकृष्णकी सेवाके अतिरिक्त अन्यान्य अभिलाषाओंसे रहित होकर तथा ज्ञान-कर्म आदिके प्रति स्वाधीन चेष्टाका परित्यागकर समस्त इन्द्रियोंके द्वारा अनुकूल भावसे कृष्णानुशीलन—कृष्णकी सेवा करना ही शुद्धा भक्ति है।

ज्ञान और कर्म जब भक्तिके अनुगत होते हैं तब उनमें कोई दोष नहीं होता। किन्तु उनके प्रति स्वाधीन चेष्टा होनेसे वे भक्तिके विरोधी हो जाते हैं। ऐसी अवस्थामें भजन विशुद्ध नहीं होता। मुण्डकोपनिषद्‌में इसी बातका प्रतिपादन किया गया है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥
(मुण्डक ३।२।१)

अनेक शास्त्रोंको पढ़ने-सुननेसे, तीक्ष्ण बुद्धि या तर्क शक्तिद्वारा अथवा शास्त्र-विचारमें प्रकांड पाण्डित्यके द्वारा कोई अखिलात्मा भगवान्‌को लाभ नहीं कर सकता। जो भगवान्‌का शरणापन्न होता है—उन्हींको एकमात्र अपना प्रभु जानकर वरण करता है भगवान् उसके निकट ही आत्म विक्रय कर देते हैं।

अभिप्राय यह कि केवल शास्त्रोंको पढ़कर या सिद्धान्तोंको सुनकर ही भगवान्‌की कृपा प्राप्त नहीं की जा सकती है। ज्ञान और कर्मके प्रयासका परित्याग कर भगवान्‌की शरण ग्रहण करना ही विशुद्ध भजनका मूल है। इसीके द्वारा कृष्ण-प्रेमरूप परम पुरुषार्थ लाभ होता है।

## भजन कालकी दो अवस्थाएँ—(क) अनर्थ युक्त, (ख) अनर्थमुक्त

भजनकालमें साधककी दो अवस्थायें होती हैं—(क) अनर्थयुक्त अवस्था (ख) अनर्थमुक्त अवस्था। जितने दिनतक भजनमें साधकके अनर्थोंका नाश नहीं होता, उतने दिनतक भजन न्यूनाधिक परिमाणमें अशुद्ध रहता है। सत्सङ्गमें भजन करते-करते साधुकी कृपासे अनर्थ दूर होनेपर भजन विशुद्ध होता है।

## (क) अनर्थयुक्त अवस्था

अनर्थ चार प्रकारके हैं—(१) स्वरूप भ्रम, (२) असत् तृष्णा, (३) हृदयकी दुर्बलता और (४) अपराध।

### प्रथम अनर्थ—स्वरूप भ्रम

जीव स्वरूपतः कृष्णदास है, इसे भूल जाना—न जानना ही स्वरूप भ्रमरूप पहला अनर्थ है। इस अनर्थसे नाना प्रकारकी विघ्न-बाधायें उत्पन्न होकर भजनको विशुद्ध नहीं बनने देतीं। जीव कृष्णका दास है, कृष्णजीवोंके प्रभु हैं, इस जगत्की रचना भगवत् शक्ति मायाके द्वारा हुई है—इस तत्त्व-ज्ञानके अभावके कारण क्षुद्र जीवमें ब्रह्मत्वका आरोप या कल्पना, माया ब्रह्मका भ्रम है—ऐसी धारणा, जगत् मिथ्या आदि नाना प्रकारके असत् सिद्धान्तोंका उदय होता है। फलतः कोई मायावादी, कोई निर्विशेषवादी, कोई ज्ञानी, कोई भोगी और कोई कर्मी होकर भजनको अशुद्ध बना डालते हैं। इनसे किसी प्रकार भी जीवोंका मङ्गल नहीं होता, बल्कि उलटा अमङ्गल होता है। श्रीमन्महाप्रभुका कथन है—

'प्रभु कहे—मायावादी कृष्णे अपराधी।
ब्रह्म, आत्मा, चैतन्य, कहे निरवधि॥
अतएव कृष्णनाम ना आइसे तार मुखे।
मायावादीगण याते महा बहिर्मुख॥'
(श्री चैतन्यचरितामृत)

मायावादी कृष्णके चरणोंमें अपराधी होता है, वह सर्वदा 'ब्रह्म', 'आत्मा', और 'चैतन्य' शब्दोंका उच्चारण करता है। इसीलिये उसके मुखसे कृष्णनाम नहीं निकलता। फलतः वे महा बहिर्मुख होते हैं।

निर्विशेषवादियोंका कहना है—'ईश्वर निराकार हैं।' वे भगवान्के नित्य सच्चिदानन्दघन मूर्त्तिका विश्वास नहीं करते। वे उसे काल्पनिक मानते हैं और कहते हैं कि जीव भजनके बलसे अन्तमें ईश्वरमें लीन हो जाता है। इनके सम्बन्धमें महाप्रभुका कथन है—

'ईश्वरेर श्रीविग्रह सच्चिदानन्दकार॥
श्रीविग्रह ये ना माने सेई त पाषण्ड।
अस्पृश्य, अदृश्य सेई, हय यम-दण्डय॥
येई मूढ़ कहे—जीव ईश्वर हय 'सम'।
सेई त पाषण्डी हय, दण्डे तारे यम॥'
(श्रीचैतन्यचरितामृत)

भगवान्का श्रीविग्रह सच्चिदानन्द आकारयुक्त होता है। अतः जो उनका श्रीविग्रह नहीं मानते, वे पाषण्डी हैं। उन्हें न तो स्पर्श करना चाहिये और न देखना ही चाहिये। ऐसे लोगोंको यम महाराज दण्डका विधान देते हैं।

जो लोग जीव और ईश्वरको एक या समान मानते हैं—वे मूढ़ हैं। यम ऐसे पाषण्डियोंको भी शास्ति प्रदान करता है।

## मायावादियोंके ज्ञान और योगियोंके आसनसे चित्त शुद्ध नहीं होता

ज्ञानवादी शुष्कवैराग्य और शास्त्र अध्ययन आदि उपायोंका अवलम्बन कर आत्म-शुद्धिकी आशा करते हैं, किन्तु श्रीमद्भागवतमें ऐसे ज्ञानकी उपेक्षाकी गई है—

'नैष्कर्म्यमप्युच्युतभाववर्जितं
न शोभते ज्ञानममलं निरंजनम्।'

श्रीमन्महाप्रभुने भी ऐसे ज्ञानकी कड़ी निन्दाकी है—

ज्ञानी जीवन्मुक्त-दशा पाईनु करि माने।
वस्तुतः बुद्धि 'शुद्ध' नहे कृष्णभक्ति बिने॥
शुष्क ज्ञाने—जीवन्मुक्त अपराधे अधोमजे॥
(श्रीचैतन्यचरितामृत)

—ज्ञानी अपनेको जीवन्मुक्त मानता है, पर वस्तुतः कृष्णभक्तिके बिना चित्त शुद्ध नहीं हो सकता। श्रीकृष्णके चरण-कमलोंका अनादर करनेसे उसका अधोपतन हो जाता है।

योगी यम, नियम, आसन, प्रणायाम आदिके अभ्याससे आत्मा और परमात्माका संयोग साधन करते हैं, किन्तु वे भी अखिलात्मा भगवान् कृष्ण-चन्द्रको प्राप्त नहीं कर पाते। श्रीमन्महाप्रभु कहते हैं—

कर्म निन्दा, कर्म त्याग, सर्व शास्त्र कहे।
कर्म हैते प्रेमभक्ति कृष्णे कभु नहे॥
( श्रीचैतन्यचरितामृत )

—समस्त शास्त्रोंमें कर्मकी निन्दा की गई है तथा कर्मोंके त्यागका ही निर्देश दिया गया है। कर्मके द्वारा कृष्णके प्रति प्रेम-भक्ति कभी भी नहीं हो सकती।

## विशुद्ध ज्ञान

इन सब कुमतोंका परित्यागकर सम्बन्ध--ज्ञानके साथ भजन करनेसे विशुद्ध भजन हो सकता है; जीव कृष्णका दास है, कृष्ण जीवोंके प्रभु हैं, प्रेम ही जीवोंका प्रयोजन है, प्रेमके द्वारा ही कृष्णका साक्षात्कार हो सकता है, एवं भक्तिके फलस्वरूप प्रेम उत्पन्न होता है—ऐसे ज्ञानको विशुद्ध सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजनका ज्ञान कहते हैं। ऐसे ज्ञानसे युक्त होकर भजन करनेसे भजन विशुद्ध होता है और विशुद्ध भजनके फलस्वरूप शुद्धाभक्ति लाभ होती है।

## द्वितीय अनर्थ–असत् तृष्णा

जीवोंका दूसरा अनर्थ है-असत् तृष्णा। यह अनेक प्रकारका होता है। भगवान्‌की सेवाके अतिरिक्त जीवके हृदयमें उत्पन्न होने वाली समस्त कामनाओंको असत् तृष्णा कहते हैं। इह लोकमें सुख-ऐश्वर्यभोग,परलोकमें स्वर्ग भोग, मोक्ष--सुखका लोभ—ये सभी असत् तृष्णाके अन्तर्गत हैं। साधकके हृदयमें असत् तृष्णाका वास रहनेसे भजन किसी प्रकार शुद्ध नहीं हो सकता। श्रीमन्महाप्रभु कहते हैं—

भुक्ति-मुक्ति-आदि वांछा यदि मने हय।
साधन करिले प्रेम उत्पन्न ना हय॥
( श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य १६।१७५ )

कृष्ण-भक्त कृष्ण-सेवाको छोड़कर और कोई भी अन्य प्रार्थना नहीं करता। स्वर्ग और मोक्ष कृष्ण-भक्तोंके लिये नरकके समान दुखप्रद प्रतीत होता है। पंच-प्रकारकी मुक्ति भगवान्‌के द्वारा दिये जानेपर भी भक्त उन मुक्तियोंको स्वीकार नहीं करता—

नारायणपरा सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति।
स्वर्गापवर्ग नरकेष्वपि तुल्यार्थ दर्शिनः॥
(श्रीमद्भा० ६।१७।२८)

सालोक्यसार्ष्टि सामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥
(श्रीमद्भा० ३।२९।१३)

## मोक्षकी कामना असत् तृष्णा है, अतः भजन-विरोधी है

मोक्षकी वांछा जीवोंकी अज्ञानताका फल है। अज्ञ जीवका आपात् मनोहर—परिणाममें भयंकर मोक्ष, भक्तिका सर्वथा विरोधी तत्त्व है। मोक्षकी वांछा हृदयमें प्रवेश करनेसे वहाँ भक्तिका प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। श्रीरूपगोस्वामीकी यह शिक्षा है--

भुक्तिमुक्ति स्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्त्तते।
तावद्भक्तिसुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु १२।१५)

श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी इसकी प्रतिध्वनिकी गयी है—

अज्ञान-तमेर नाम कहिए कैतव।
धर्म-अर्थ-काम-वांछा आदि एई सब॥
तार मध्ये मोक्ष वांछा कैतव-प्रधान।
याहा हैते कृष्ण-भक्ति हय अन्तर्ध्यान॥
(चै० च० म० १।६०।६२)

अर्थात् घोरतम अज्ञानको कैतव (कपटता) कहते हैं, अर्थ, धर्म, और कामकी वासनाएँ ही कैतव है। इन चतुर्वर्गोंमें मोक्षकी कामना ही सर्वप्रधान कैतव है। क्योंकि मोक्षकी कामना होनेसे हृदयसे भक्ति अन्तर्ध्यान हो जाती है।

## प्रतिष्ठाकी आशा और भोगकी लालसा भजनकी विरोधिनी हैं

थोड़ीसी प्रतिष्ठाकी आशा अथवा भोगकी लालसाके वशमें होकर जीव कपट भक्त हो जाता है। अतएव इन दुराशाओंका परित्याग नहीं करनेसे विशुद्ध भजन कैसे हो सकता है ? श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी कहते हैं—

प्रतिष्ठाशा धृष्टा श्वपच रमणी मे हृदि नटेत्।
कथं साधु-प्रेमाः स्पृशति शुचिरेतन्ननुमनः॥
(मनः शिक्षा–७)

प्रतिष्ठाशारूपिणी चण्डालिनी जितने दिनोंतक हृदय प्राङ्गणमें नृत्य करती रहेगी, पवित्र स्वभाव वाली प्रेमदेवी भक्ति वहाँ कैसे आगमन कर सकती हैं ?

अतएव बहुत सावधानीसे इस दुष्टाको हृदय-क्षेत्रसे दूर करना कर्तव्य है। प्रतिष्ठारूपी विष्ठाको यत्न-पूर्वक स्पर्श न करना ही अच्छा है। सनातन गोस्वामीका भी यही उपदेश है—

'कुर्य्युः प्रतिष्ठा विष्ठया यत्नमस्पर्शने वरम्।'

## तृतीय अनर्थ–हृदयदौर्बल्य

हृदयदौर्बल्य—हृदयकी दुर्बलता जीवोंका तृतीय अनर्थ है। असत् तृष्णा बढ़ते-बढ़ते जीवको असत् विषयोंमें इस प्रकार फँसा देती है कि जीव भक्ति-साधक कर्मोंका आदर कभी नहीं करता। दूसरी तरफ अभक्ति–साधक कर्म ही उसके स्वभावके रूपमें बदल जाते हैं। यही जीवका हृदयदौर्बल्यरूप अनर्थ है। इस अनर्थसे असत्संग, कपटता और बहिर्मुखता आदि नाना प्रकारके उत्पातोंकी सृष्टि होती है। इन उत्पातोंका समूह भी भजनको विशुद्ध नहीं होने देता। असत्संगमें तरह-तरहकी असत् आलोचनाएँ हुआ करती हैं। फलस्वरूप असद्विषयोंमें आसक्ति प्रबल हो जाती है जिससे भजनमें विघ्न पड़ता है। अतएव महाप्रभुकी आज्ञा है—

असत्संगत्याग—एइ वैष्णव आचार।
स्त्रीसंगी–एक असाधु, 'कृष्णाभक्त' आर॥"
(चैतन्यचरितामृत मध्य १२।८४)

—असत्-संगका त्याग करना ही वैष्णवोंका श्रेष्ठ आचरण है। यह असत्संग दो प्रकारका होता है–(१) जो स्त्रियोंका संग करते हैं, और (२) जो अभक्त हैं। इन दोनोंका संग परित्याग करना चाहिए।

## वैष्णवोंमें जातिबुद्धि करना और कुटिलता (कुटिनाटी) हृदयदौर्बल्यके अन्तर्गत हैं

हृदयकी दुर्बलतासे उत्पन्न कुटिलता द्वारा सर्व-प्रथम वैष्णवमें जाति बुद्धि-रूप महान दोष उपस्थित होता है और अपनी जातिका, विद्याका, रूपका तथा ऐश्वर्यका अहंकार पैदा हो जाता है। इन्हीं अहंकारोंके हेतु वैष्णवोंके अधरामृत (उच्छिष्ट), चरणामृत और चरण-रजमें श्रद्धा नहीं होती। वैष्णवोंमें प्रीति होनेके बदले दिनोंदिन अश्रद्धा बढ़ती जाती है और यही अश्रद्धा जीवोंका क्रमशः अधःपतन कर उनके भजनको सम्पूर्णरूपेण नष्ट कर देती है। अतः महाप्रभु आज्ञा देते हैं—

अतएव गृहे तुमि कृष्ण भज गिया।
कुटिनाटि परिहरि एकान्त हइया।
(चैतन्यभागवत)

—इसीलिए घर जाकर कुटिलताका परित्यागकर एकान्तमें (साधुसंगमें) कृष्णका भजन करो। और दास गोस्वामी भी कहते हैं—

अरे चेतः प्रोद्यत्कपटकुटिनाटि भरखर-
क्षरमुत्रे स्नात्वा दहसि कथमात्मानमपि माम्।

अरे मन ! तू कपटता और कुटिनाटी (कुटिलता) रूप मूत्रमें स्नानकर मुझे और अपनेको दग्ध क्यों कर रहा है ?

कुटिलताका परित्याग किये बिना किसी प्रकार भी सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती। हृदयकी दुर्बलताके कारण बहुधा भजन-प्रतिकूल क्रियाका अथवा संगका परित्याग नहीं होता। असत् कार्योंसे अथवा असत् संगसे भक्तिदेवीके चरणोंमें अपराध हो जाता है जिससे भजन अशुद्ध हो जाता है। अतएव हृदय-दौर्बल्यका त्याग करते हुए भजनमें उत्साह प्रकाश तथा

निरपेक्षताकी रक्षा करनेसे भजनमें सहायता मिलती है। श्रीमन्महाप्रभुका इस विषयपर उपदेश है—

'यत्नाग्रह बिना भक्ति ना जन्माय प्रेमे।'

(चै० च० म० २४।१६५)

फिर अन्यत्र भी—

'निरपेक्ष नहिले धर्म ना जाय रक्षणे।'

भावार्थ यह कि यत्न और आग्रहके बिना भक्ति प्रेमको उत्पन्न नहीं कर सकती और निरपेक्ष न होनेसे धर्मकी रक्षा नहीं की जा सकती है।

## ९-अनर्थ-अपराध

अपराध ही जीवोंका चतुर्थ अनर्थ है। स्वरूप भ्रमसे असत् तृष्णा और असत् तृष्णासे हृदयदौर्बल्य-का प्रादुर्भाव होता है। यही हृदयदौर्बल्य ही बढ़ते-बढ़ते अपराधके रूपमें बदल जाता है। अपराध होने-पर यथेष्ट साधनाका भी कुछ फल नहीं होता। यथा चैतन्यचरितामृतमें कहा गया है—

'हेन कृष्णनाम यदि लय बहुवार।
तबु यदि प्रेम नहे, नहे अश्रु धार॥
तबे जानि, अपराध ताहाते प्रचुर।
कृष्ण नाम बीज ताहे ना करे अङ्कुर॥'

(चैतन्यचरितामृत)

अर्थात् यदि प्रेमदान करने वाला कृष्णनाम अधिक रूपमें ग्रहण किये जानेपर भी न तो प्रेम ही उत्पन्न होता है और न आँखोंसे प्रेमाश्रु ही विगलित होता है, तो जानना चाहिए कि हमारे अपराधोंके फल-से ही ऐसा नहीं होता। अपराधोंकी अधिकतासे ही हमारे मरुतुल्य हृदय-क्षेत्रमें कृष्ण-नाम रूपी बीज अंकुरित नहीं होता।

अपराध अनेक प्रकारके होनेपर भी प्रधानतः तीन भागोंमें विभक्त किये गये हैं—(१) वैष्णव अपराध, (२) सेवा अपराध और (३) नामापराध।

### वैष्णव-अपराध और सेवा-अपराधः—

स्कन्द पुराणमें वैष्णव अपराधकी एक तालिका दी गयी है—

हन्ति निन्दति वै द्वेष्टि वैष्णवान्नाभिनन्दति।
क्रुध्यते जाति नो हर्षं दर्शने पतनानि षट्॥

वैष्णवकी हत्या करना, निन्दा करना, उनसे द्वेष करना, उनका अभिनन्दन न करना, उनके प्रति क्रोध प्रकाश करना, और उनका दर्शन करने पर हर्ष युक्त न होना—इन छः अपराधोंसे जीवका महापतन होता है। सभी भजन प्रिय व्यक्तियोंको इन अपराधों-से सावधानीपूर्वक बचना चाहिए। सेवा-अपराध श्रीमूर्त्तिके सम्बन्धमें विचारणीय है।

### नामापराध दस हैं। यथाः—

**(१) साधु निन्दा**—जिन्होंने अनन्यभावसे हरि नामका आश्रय ग्रहण किया है, उनकी निन्दा या उनसे द्वेष करना। वे केवल नाम तत्त्व ही जानते हैं, ज्ञान, योग आदि कुछ नहीं जानते—ऐसा विचारकर उनकी अवज्ञा करनेसे अपराध होता है।

**(२) अन्यान्य देवताओंको स्वतन्त्र ज्ञान**—श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान हैं—समस्त ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं, अन्यदेव-देवियाँ उनके अधीन हैं, कृष्णका भजन करनेसे ही अन्य देवदेवियोंका भजन हो जाता है—ऐसा विश्वस न कर, कृष्ण एक ईश्वर है, शिव उनसे पृथक एक और ईश्वर है, इस प्रकार स्वतंत्र शक्ति-सिद्ध अनेक ईश्वरोंकी कल्पना करनेसे अपराध होता है।

**(३) गुरुकी अवज्ञा**—जो नाम तत्त्वकी सर्वो-त्तमताकी शिक्षा देते हैं, वे नाम-गुरु हैं। यदि ऐसा-विचार किया जाय कि ये नाम-तत्त्व या नाम- शास्त्रों-के ही विशेष पारंगत है, किन्तु अन्य शास्त्र या साध-नोंके सम्बंधमें कुछ भी नहीं जानते तो अपराध हो जायगा। समस्त कर्मोंका चरम फल है नाम तत्त्वकी उपलब्धि; जिन्हें वह हो गई है, उन्हें अन्य कुछभी प्रयोजनीय नहीं है, उन्हें कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता।

**(४) श्रुति निन्दा**—वेदोंमें नामका बहुत ही माहात्म्य बतलाया गया है। उन नाम-माहात्म्यसूचक

वेद- वाणियोंमें अविश्वासमूलक द्वेषभाव पोषण करनेसे अपराध होता है।

**(५) हरिनाममें अर्थवाद**---अर्थात् राम, कृष्ण, हरि आदि नाम कल्पित हैं, भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, कर्म, वास्तवमें कुछ भी नहीं हैं—ऐसी धारणा करनेसे अपराध होता है।

**(६) नाम के बलपर पाप करना**---नाम करनेसे सब पाप दूर हो जायेंगे अथवा नाम करते-करते क्रमशः चित्त शुद्ध होकर पापोंमें अब और रुचि न रहेगी, अतः आपाततः स्वार्थके लिये एक पाप कर लूँ---ऐसा विचार कर नामके बलपर जो पाप किया जाता है, वह बहुत ही भयानक अपराध होता है।

**(७) शुभ कर्मोंसे नामकी समता**— अर्थात् धर्म, व्रत, तप,आदि जैसे शुभ कर्म हैं, नाम भी उन्हीं के समान एक शुभ कर्म विशेष है। अतएव किसीभी एक शुभ कर्मका आश्रय करनेसे आत्म-शुद्धि हो सकती है---ऐसा सोचकर नाम ग्रहण नहीं करनेसे अपराध होता है।

**प्रमाद**—नाममें अनवधानता अर्थात् नाम ग्रहण में उदासीनता, जड़ता, और विक्षेप होनेसे प्रमादरूप अपराध होता है। नाम ग्रहण करते समय नामके प्रति उदासीन होकर मुखसे नाम उच्चारण करना और मन-ही-मन नाना प्रकारके विषयोंकी चिन्ता करना ही उदासीनता और नाम ग्रहणमें अरुचि है। नाम-संख्या कब शेष होगी—ऐसा सोचकर बार बार जपमालाकी सुमेरुके प्रति लक्ष्य करना आदि जड़ताका लक्षण है। प्रतिष्ठाकी आशा या शठताके वशीभूत होकर नाम ग्रहण करनेको विक्षेप कहते हैं।

**(९) अज्ञ और अश्रद्ध व्यक्तियोंको नाम मन्त्र-दान**---अज्ञ और श्रद्धाहीन लोगोंके प्रति नाम माहात्म्य प्रचार कर नाममें उनका विश्वास होनेपर उन्हें नाम मन्त्र प्रदान करना चाहिये। थोड़े बहुत अर्थके लोभसे अयोग्य शिष्यको नाम देनेसे गुरुका इस अपराधसे अधोपतन हो जाता है।

**(१०) अहं-मम भाव**--- नामका माहात्म्य जान-सुन कर भी विषयोंमें आसक्तिकी अधिकताके कारण नाम- भजनमें प्रावृत्त न होना एक बड़ा अपराध है।

इन दस प्रकारके नामापराधोंका परित्याग कर कृष्णनामका श्रवण और कीर्त्तन करनेसे प्रेम लाभ होता है। यथा, महाप्रभुका कथन है—

(क) 'श्रवण' कीर्त्तन हइते कृष्णे हय प्रेमा ॥
(चैतन्यचरितामृत)

(ख) निरपराधे नाम लैले पाय प्रेमधन ॥
(चैतन्यचरितामृत)

## कृष्णनामका अनुशीलन करना ही विशुद्ध भजन है

कृष्णनामके अनुशीलनके अतिरिक्त वैष्णवोंके लिये और कोई भजन नहीं है, अन्य अङ्ग-समूह नामके सहचररूपमें ग्रहण किये जाते हैं। अन्याभिलाष, अन्य देव-देवीकी पूजा एवं स्वाधीन ज्ञान-कर्म जन्य प्रयासको परित्याग कर अपराध शून्य होकर नाम करनेसे भजन विशुद्ध हो जाता है। और विशुद्ध भजनके फल-स्वरूप कृष्ण-प्रेमका उदय होता है। कृष्णप्रेमके उदय होनेसे ही कृष्ण-साक्षात्कार लाभ होता है।

—ॐ विष्णुपाद श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर

# शरणागति

## दैन्य—अपराध और लज्जात्मक

[ ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर ]

करूँ निवेदन अहो प्रभो, मैं तुम्हरी चरण-शरण में ।
पतित अधम मैं बहुत बड़ा हूँ जानें सब त्रिभुवन में ॥
मुझ सा पापी नहीं जगत में कहता सत्य विचार ।
मुझ सा अपराधी नहीं कोई और मध्य-संसार ॥
सब पापों का अपराधी मैं बहुत बड़ा हूँ पापी ।
पतित उधारन की महिमा तुमने सब जग में थापी ॥
तुम व्रजेन्द्रनन्दन सर्वेश्वर तुमको कहा सुनाऊँ ।
तुम्हें छोड़ हे नाथ, कहो मैं कौन शरण में जाऊँ ॥
जगत तुम्हारा है यह स्वामी तुम्हीं सर्वमय आप ।
तुम्हरे प्रति अपराध हुआ है तुम्हीं करो क्षय पाप ॥
तुम ही तो हो पतित जनों के आश्रय जग के माहीं ।
सिवा तुम्हारे नाथ जगत में कोइ दयामय नाहीं ॥
ऐसे अपराधी हे स्वामी हैं इस जग में जितने ।
तुम्हरे शरणागत होयेंगे होंगे पापी कितने ॥
कर जोड़े यह भक्तिविनोद शरण तुम्हारी लेता ।
तुम्हरे ही चरणों में स्वामी आत्मसमर्पण करता ॥

---

## श्रीकृष्णके प्रति

जय-जय इन्दुन बदन मदन मद कदन सुहावन ।
सदन रूप निधि-अँनत अनत नहिं एकहु पावन ॥
धरन गिरी परजन्य-दर्प सब खण्डन हारे ।
करहु लहैते लाल भाल मम अङ्क सुधारे ॥
सोभित सह वृषभानुजा हरित बरन होय जाय ।
सुखकारी 'शङ्कर' सहज जय-जय श्री व्रज राय ॥

श्री शङ्करलाल चतुर्वेदी, बी० ए० ( साहित्यरत्न )

---

# मायावादकी जीवनी

[ पूर्व प्रकाशित वर्ष १, संख्या ८, पृष्ठ १८० से आगे ]

## सत्ययुगमें ज्ञानवाद और उसकी परिणति

### 'चतुःसन'

सत्ययुगमें सनक, सनातन, सनन्दन और सनत्कुमार—इन चारों कुमारोंकी कथा शास्त्रोंसे विदित होती है। ये चतुःसनके नामसे परिचित हैं। प्रकृति और पुरुषके सहयोगसे जिस सृष्टि-प्रक्रियाका लोक समाजमें प्रचलन है अर्थात् जीवोंका जैसे इस जगत् में जन्म होता है, उस नियमके अपवाद हैं ये चारों कुमार। ब्रह्माके कल्पना-प्रसूत सनकादि चारों कुमार मानस-पुत्रके रूपमें ब्रह्माके प्रथम सृष्टि-कौशलके भव्य निदर्शन स्वरूप विख्यात हैं। वे बाल्यकालसे ही ज्ञानयोग द्वारा ब्रह्मचर्यका पालन करते थे। चारों कुमारोंका यह ज्ञानयोग कुछ-कुछ निर्विशेषमूलक होनेके कारण शुद्धभक्तिके प्रतिकूल पड़ता था। इससे पिता ब्रह्मा बड़े दुःखी हुए। इन्होंने भगवान्के निकट जाकर चारों कुमारोंका कल्याण करनेके लिए प्रार्थना की। सृष्टिके प्रथम संतानोंकी ऐसी अवस्था देखकर भगवान्ने हंसरूपमें अवतीर्ण होकर चारों कुमारों और नारदको भक्तियोगकी शिक्षा दी थी। श्रीमद्भागवतमें इस प्रसंगमें ब्रह्मा नारद और चारों कुमारोंको सम्बोधन करते हुए कह रहे हैं—

"तुभ्यञ्च नारद ! भृशं भगवान् विवृद्ध-
भावेन साधु परितुष्ट उवाच योगम्।
ज्ञानञ्च भागवतमात्मसत्त्वदीपं
यद्वासुदेव-शरणा विदुरञ्जसैव।"

(श्रीमद्भा० २।७।१६)

अर्थात् तुम्हारे अत्यन्त प्रेमसे परम प्रसन्न होकर 'सावतारमें भगवान्ने तुम्हें भक्तियोग और उसके अनुकूल भगवद्विषयक ज्ञानका उपदेश दिया था।

उक्त श्लोकमें 'तुभ्यञ्च नारद' इस वाक्यमें 'च' शब्दका तात्पर्य—अचिन्त्य भेदाभेद तत्त्वके आचार्य गोविन्द भाष्यके रचयिता आचार्य श्रीपाद बलदेवने सनकादि चारों कुमारोंसे बतलाया है। लघुभागवतामृतके हंसावतार प्रसंगमें ७२ वें श्लोककी 'सारङ्गरङ्गदा' टीकामें उन्होंने लिखा है—

श्रील कविराज गोस्वामीकी लेखनी द्वारा विदित होता है कि भगवान् शेषावतारने सनकादि ऋषियोंको श्रीमद्भागवतकी शिक्षा दी थी। यथा—

'सेई त अनन्त शेष भक्त अवतार।'
ईश्वरेर सेवा बिना नाहि जाने आर॥
सहस्रवदने करे कृष्ण-गुणगान।
निरवधि गुणगान अन्त नाहि पान॥
सनकादि भागवत सुने यार मुखे।
भगवानेर गुण कहे भासे प्रेमसुखे॥

(चैतन्यचरितामृत)

चैतन्यचरितामृत ग्रन्थसे प्रमाणित होता है कि केवल हंसावतारने ही सनकादि चारों कुमारोंको भक्ति-सिद्धान्तका उपदेश नहीं दिया था, अपितु शेषावतारने भी उन्हें भागवतधर्मकी शिक्षा दी थी। श्रीमद्भागवत भक्ति-सम्बन्धी अचिन्त्य-भेदाभेद तत्त्वका चरम सिद्धान्त-शास्त्र है। सनकादि चारों कुमारोंने भक्तावतार श्रीअनन्तदेवके निकट भागवतके उन सिद्धान्तोंको श्रवण करनेका सौभाग्य प्राप्त किया था, इसीलिए सनक सम्प्रदायके आचार्य श्रीपाद निम्बार्क स्वामीने वेदान्तका द्वैताद्वैत-सिद्धान्तका प्रचार करनेके लिए चतुःसनको ही अपना पूर्वाचार्य स्वीकार कर वेदान्तके 'पारिजात सौरभ' नामक भाष्यकी रचना की है।

सनकादि चारों कुमारोंके नामपर ही इस सम्प्रदायका नाम सनक सम्प्रदाय हुआ है। इस सम्प्रदायके इतिहासकी आलोचना करनेसे विदित होता है कि हंसावतार ही इन चारों कुमारोंके गुरु थे। हंसावतारके निकट भक्तिकी कथा सुनकर वे अपने शुष्क ज्ञानका परित्यागकर भक्तिका प्रचार करने लगे। अब उनकी गणना भक्ति-धर्मके आचार्योंमें होने लगी।

## वास्कलि या वास्कल

वास्कल-उपाख्यानके अनुसार वास्कलि या वास्कलने अद्वैतवादी बाध्वऋषिके निकट अद्वैतवादकी शिक्षा पाई थी। कोई-कोई उन्हें बाध भी कहते हैं। जनश्रुतिके अनुसार बाध्व ऋषिके बाद वास्कल एक प्रधान अद्वैतवादी हुए थे। आचार्य शङ्करने भी ब्रह्मसूत्रके ३।२।१७ सूत्रके भाष्यमें बाध्व-वास्कलिके कथोपकथनको श्रुतिसे प्रमाण-स्वरूप ग्रहण किया है। पाठकोंकी जानकारीके लिए उसे नीचे उद्धृत किया जाता है—

'वास्कलिना च बाह्वः ( र्धः ) पृष्टः सन्नवचनेनैव ब्रह्म प्रोवाचेति श्रुयते स होवाचाधाहि भगवो ब्रह्मेति स तुष्णीं बभूव, तं ह द्वितीये वा तृतीये वा वचन उवाच—ब्रह्मः खलु, त्वन्तु न विजानास्युपशान्तोऽयमात्मा।'

अर्थात् मायावादके ब्रह्मका ज्ञान लाभ करनेके लिए चुप-चाप मूक होकर बैठनेके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं। केवल मूक होकर बैठनेसे ही ब्रह्मज्ञान उत्पन्न हो जायगा। युक्ति-विचार या शास्त्रज्ञानके द्वारा इस मायावादके ब्रह्मके विषयमें कुछ भी जाननेका कोई उपाय नहीं है। मैंने पहले शंकराचार्य द्वारा रचित दक्षिणामूर्त्ति-स्तवके जिस बारहवें श्लोकको उद्धृत किया है, वह बाध्व-वास्कलि उपाख्यानकी ही प्रतिध्वनि स्वरूप है। शंकराचार्य द्वारा उद्धृत उक्त श्रुति-वचनका वेदान्त वागीश द्वारा मन्तव्यके साथ अनुवाद आप लोगोंके सामने उपस्थित कर रहा हूँ। यथाः—

"श्रुतिमें और भी सुना जाता है कि वास्कलि द्वारा जिज्ञासा किये जानेपर बाध्वने निरुत्तर द्वारा ब्रह्म-तत्त्वका निर्देश दिया था। 'भगवन्! आप मुझे ब्रह्म अध्ययन करावें।'—वास्कलिने जिज्ञासा की। किंतु बाध्व चुपचाप मूक जैसे बैठे रहे। 'भगवन्! मुझे ब्रह्मका उपदेश करें।'—वास्कलिने दूसरी बार फिर पूछा और फिर तीसरी बार भी। 'मैं तो निश्चय पूर्वक कह रहा हूँ कि यह आत्मा उपशान्त अर्थात् अखण्डैक रस है।'—बाध्वने अपना अभिप्राय प्रकट किया। ( अभिप्राय यह कि ब्रह्म निर्विशेष होनेके कारण वाक्यपथके अतीत और बोलनेके अयोग्य हैं, अतः निरुत्तरता ही तुम्हारे प्रश्नका प्रकृत उत्तर है। )

उक्त प्रामाणिक ऐतिह्य पर दृष्टिपात करनेसे यह पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाता है कि वास्कलि मायावादी थे, इसमें तनिक भी संदेह की गुँजाइश नहीं। इसी वास्कलिका परिचय श्रीमद्भागवतमें भी पाया जाता है—

हिरण्यकशिपोर्भार्य्या कयाधुर्नाम दानवी।
जम्भस्य तनया सा तु सुषुवे चतुरः सुतान्॥
संह्लादं प्रागनुह्लादं ह्लादं प्रह्लादमेव च।
तत्स्वसा सिंहिकानाम राहुं विप्रचितोऽग्रहीत्॥
अनुह्लादस्य सूर्य्यायां वास्कलो महिषस्तथा॥
( श्रीमद्भा० ६।१८।१२।१६ )

अर्थात् हिरण्यकशिपुकी पत्नि कयाधु नामक एक दानवी थी! उसके पिता जंभने उसका विवाह हिरण्यकशिपुके साथ कर दिया था। कयाधुने चार पुत्रोंको प्रसव किया था—संह्लाद, अनुह्लाद, ह्लाद, और प्रह्लाद। इनकी सिंहिका नामक एक बहन भी थी। उसका विवाह विप्रचित नामक एक दानवके साथ हुआ और इनसे राहु नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई ॥ १२-१३ ॥ अनुह्लादकी सुर्य्या नामक पत्निसे दो पुत्र हुए—वास्कल और महिष ॥ १६ ॥

हिरण्यकशिपुके औरससे कयाधुके गर्भमें अनुह्लादका जन्म हुआ था। माता-पिता असुर होनेके कारण अनुह्लाद भी उनकी अपेक्षा कुछ अन्य प्रकारके न हुए। इन्हीं अनुह्लादके पुत्र ही वास्कल हैं। अत-

एवं वास्कल भी उस युग में एक असुरके रूपमें ही प्रसिद्ध थे। मायावादके इतिहासमें ऐसे ही अनेक उदाहरण युग-युगमें ही दीख पड़ते हैं। यदि ऐतिह्य-की तनिक भी प्रामाणिकता सिद्ध है तो उसके आधार पर यह स्पष्ट ही प्रमाणित होता है कि मायावादके चिन्ताश्रोतका आदर असुर और राक्षस कुलमें ही विशेषरूपेण होता आया है। निरपेक्ष सरल-हृदय वाले मुनि-ऋषियोंके बीच जिन्होंने अद्वैतवादको स्वीकार किया, पीछेसे वे भगवदवतारों द्वारा शोधित किये जानेपर मायावादको परित्याग कर श्रीश्रीभगवान् के चरण-कमलोंका पुनः आश्रय करनेमें समर्थ हुए थे। किन्तु मायावादका आश्रय ग्रहण करने वाले कठिन हृदययुक्त असुर लोग अत्यन्त कट्टर अन्ध-विश्वासी होनेके कारण भक्ति-तत्त्वके अधिकारी न हो सके। भक्ति तत्त्वके रक्षक भगवान् एवं भगवद् अवतारोंने उक्त असुरोंका पूर्णरूपेण विनाश कर भक्ति तत्त्वकी श्रेष्ठता स्थापनपूर्वक उनका कल्याण किया है। भगवदवतार वामनदेवने इस वास्कलिका उद्धार किया था। गौड़ीय वैष्णवाचार्य मुकुटमणि श्रीरूप गोस्वामीने अपने लघुभागवतामृत ग्रन्थमें वामनदेव के वास्कलि-उद्धारके अतिरिक्त और भी दो बार आवि-र्भूत होनेका उल्लेख किया है। यथा—बलि और धुन्धीके यज्ञमें वामनदेवका और भी दो बार आवि-र्भाव हुआ था। उक्त ग्रन्थके अष्टादशावतार श्रीवाम-नदेवके प्रसंगका ८० संख्यक श्लोक नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

"वामनस्त्रिरभिव्यक्ति कल्पेऽस्मिन् प्रतिपेदिवान्।
तत्रादौ दानवेन्द्रस्य वास्कलेरध्वरं ययौ ॥"

अर्थात् इस कल्पमें वामनदेवका तीनवार आवि-र्भाव हुआ है। इनमें सर्वप्रथम उन्होंने वास्कलिके यज्ञमें पधारे थे।

भगवान् वामनदेवने वास्कलि असुरके यज्ञमें आविर्भूत होकर उसका उद्धार किया था। इस प्रकार सत्य युगमें चतुःसनके द्वारा ज्ञानवादका परित्याग कर भक्ति-पथका आश्रय ग्रहण करनेसे तथा वास्कलि दानवके उद्धारसे अद्वैतवादका विनाश और भक्ति धर्मकी प्रतिष्ठा हुई थी। (क्रमशः)

# श्रीचरणामृत

श्रीविष्णु और वैष्णवोंका चरणधौत-जल और श्रीशालग्राम-शिलारूपी श्रीहरिका स्नान-जल अमृत-स्वरूप होनेके कारण श्रीचरणामृत कहा गया है। श्री-चरणामृत सर्वदा सकल तीर्थोंकी अपेक्षा पवित्र होता है। श्रीकृष्णका चरणामृत पान करनेके बाद मस्तक पर धारण करना ही विधि माना गया है। श्रीचरणो-दकका पानकर मनुष्य सब प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है। विष्णुका चरणामृत पान करनेसे कोटि-कोटि ब्रह्म-हत्याका पाप भी नष्ट हो जाता है। किन्तु वही चरणामृत पृथ्वीपर गिर जानेसे अठगुना पाप होता है। पद्मपुराणमें कहते हैं—'हे अम्बरीष! श्री-हरिका चरणामृत जिनके उदरमें अवस्थित रहता है, तुम्हें उनको प्रणामकर उनके चरणोंकी धूलि लेना चाहिये।'

अगर श्रीशालग्राम-शिलाके स्नान करायेहुए जल-को प्रतिदिन पानकर मस्तक पर धारण किया जाय, तो सहस्रकोटि-तीर्थोंमें स्नान करनेसे लाभ ही क्या है? क्योंकि गङ्गा, गोदावरी, रेवा और अन्यान्य मुक्ति देने वाली नदियाँ समस्त तीर्थोंके साथ श्रीचरणामृत-में वास करती हैं। यथा—

गङ्गा गोदावरी रेवा नद्यो मुक्तिप्रदास्तु याः।
निवसन्ति सतीर्थास्ताः शालग्रामशीला-जले॥

कोटितीर्थ- सहस्रैस्तु सेवितैः किं प्रयोजनम् ।
तीर्थं यदि भवेत् पूण्यं शालग्रामशिलोद्भवम् ॥
(पद्मपुराण)

जो प्रतिदिन श्रीशालग्रामशिलाका चरणामृत पान करते हैं; उनका फिर जन्म नहीं होता । श्रीचरणामृत-का पान करनेसे तथा उसे मस्तकपर धारण करनेसे सकल देवता प्रसन्न होते हैं। कलिकालमें श्रीहरिका चरणोंदक पान करनेसे समस्त पापोंका प्रायश्चित्त हो जाता है । गङ्गा श्रीहरिका चरणोंदक है । सरस्वतीका जल (पान करनेसे) तीन दिनमें, नर्मदाका सात दिनमें, गङ्गा-जल तत्क्षण तथा यमुनाका जल दर्शन मात्रसे ही पवित्र करता है । इनका दर्शन,इनमें स्नान और इनकी महिमा-कीर्त्तन करनेसे ये पवित्र करते हैं । किन्तु कलिकालमें श्रीहरिके चरणोंदकका स्मरण करनेसे ही पवित्रता लाभ होती है । इसके सम्बन्धमें शास्त्र कहते हैं—

त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेन तु नार्मदम् ।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव यामुनम् ॥
पुनन्त्येतानि तोयानि स्नानदर्शनकीर्त्तनैः ।
पुनाति स्मरणादेव कलौ पादोदकं हरेः ॥
(पद्मपुराण)

प्रतिदिन शिव-लिङ्गका अर्चन करनेसे जितना फल होता है, उसकी अपेक्षा सहस्रगुना अधिक फल होता है--श्रीचरणामृतका पान करनेसे । अपवित्र हो , दुरा-चारी हो, अथवा महापापी ही क्यों न हो- विष्णुके चरणामृतका स्पर्श करनेके साथ ही उसी क्षण पवित्र हो जाता है । कोटि-कोटि पातकोंसे युक्त रहनेपर भी मरनेके समय जिस व्यक्तिके मस्तक, मुख और देहमें विष्णुका चरणोदक स्पर्श कराया जाता है वह यम-लोकमें गमन नहीं करता । जिन लोगोंने कभी भी दान, होम, वेद-पाठ अथवा देवताओंकी पूजा नहीं की है, वे लोग भी विष्णुके चरणोंदकका पान कर उत्तम गति प्राप्त किया करते हैं । जो चरणामृतको मस्तक पर धारण करते हैं, उनके प्रति ब्रह्मा, शिव, केशव--सभी प्रसन्न रहते हैं । जो चरणामृतका माहात्म्य वर्णन करते हैं,वे भगवद्धाममेंगमन करते हैं जिनका अचरण चिर दिन तक आचारहीन रहा हो- ऐसे व्यक्तिको भी अन्तकालमें चरणामृतका पान करानेसे वह परम गति लाभ करता है । चरणामृतका पान करनेसे अपेय-पायी अर्थात् मद्यादिका पान करने वाले, अभोज्यभोगी, कुमार्गी तथा पाप स्वभाववाले व्यक्ति भी शीघ्र ही वन्दनीय हो जाते हैं । प्रत्येक दिन चरणामृत पान करनेसे तथा मस्तकपर धारण करनेसे जरा, मृत्यु, दुःख और संसारसे मुक्ति पाई जाती है । श्रीचरणामृत मङ्गलस्वरूप, सुख-दायक-दुःख-निवारक शीघ्र-फलप्रद सर्वपापनाशक, दुःस्वप्ननाशक सर्वविघ्न-विनाशक और सब प्रकारके व्याधियोंको दूर करने वाला होता है । जैसे--

सद्यः फलप्रदं पुण्यं सर्वपापविनाशनम् ।
सर्वमङ्गल माङ्गल्यं सर्वदुःखविनाशनम् ॥
दुःस्वप्ननाशनं पुण्यं विष्णुपादोदकं शुभम् ।
सर्वोपद्रवहन्तारं सर्व व्याधि-विनाशनम् ॥
(विष्णुधर्मोत्तर)

श्रीचरणामृत मस्तकपर धारण करनेसे सब प्रकार-के उपद्रव शान्त हो जाते हैं । वैष्णवराज शम्भु श्री-चरणामृतकी महिमा जानते हैं। इसीलिये उन्होंने विष्णुके चरणोंसे निकली हुई गङ्गाको अपने मस्तक पर धारण कर रखा है । महापापी और सैकड़ों रोगों-से अक्रांत व्यक्ति भी चरणामृत पान करनेसे उनसे मुक्तहो जाता है । महापापी होनेपर भी श्रीचरणामृत पानपूर्वक शरीर त्याग करनेसे यमदूत लोग उनका कुछ भी नहीं कर सकते । ऐसे व्यक्ति यमदूतोंकी कुछ भी परवाह न कर विष्णुलोकमें गमन करते हैं। विष्णुका चरणामृत पान करना ही परम धर्म है, परम तपस्या है । जो चरणामृतका पान करते हैं, उनका सभी तीर्थोंमें स्नान हो जाता है और वे विष्णु के अत्यन्त प्रिय होते हैं । श्रीचरणामृत अकालमृत्यु, सब प्रकारके व्याधियों तथा दुःखोंका विनाश करता है । श्रीचरणामृत पान करनेसे भगवान्के चरणोंमें भक्ति भी लाभ होती है ।

बृहन्नारदीय पुराणमें देखा जाता है;—लुब्धक नामक एक बहेलियेने चरणामृतका स्पर्श करके साथ-ही-साथ निष्पाप होकर उत्तम विमानमें आरूढ़ होकर मुनिके प्रति कहा था,—हे मुने ! आपने मुझपर चरणामृत छिड़का है, इसीलिये मुझे विष्णुके परम-पदकी प्राप्ति हुई।

सप्त-समुद्रोंका जल भी त्रितापकी ज्वाला शान्त नहीं कर सकता, किन्तु थोड़ेसे चरणामृतके द्वारा ही इस संसारकी अग्नि आसानीसे बुझ जाती है। चरणामृत अमूल्य होता है, अन्य किसी भी वस्तुसे इसकी तुलना नहीं हो सकती। समुद्रकी तरंगे गिनी जा सकती हैं, किन्तु चरणामृतकी अनन्त महिमाको वर्णन कर शेष नहीं किया जा जकता है।

भक्तोंका चरणामृत भी श्रीहरिचरणामृतकी तरह पवित्र होता है। भक्त-चरणामृतभी सर्व-तीर्थ-स्वरूप, सर्वप्रकारके अशुभोंका विनाशक और मङ्गलप्रद होता है। भक्त-चरणामृतकी महिमाको वर्णन कर शेष नहीं किया जा सकता। इसीलिये शास्त्रोंका कहना है—

येषां पादरजेनैव प्राप्यते जह्नीवीजलम् ।
नार्मदं यामुनञ्चैव किं पुनः पादयोर्जलम् ॥
येषां वाक्यजलौघेन विना गङ्गाजलैरपि ।
विना तीर्थसहस्रेण स्नातो भवति मानव ॥
(स्कन्द पुराण)

जिनके चरण-रेणुसे जाह्नवी, नर्मदा और जमुनाका जल प्राप्त होता है और जिनके श्रीमुखसे निकले हुए हरिकथामृतका पान करनेसे सज्जनवृन्द असंख्य तीर्थोंमें स्नान न करनेपर भी पवित्र हो जाते हैं, उन भक्तोंके चरणामृतके माहात्म्यका और अधिक क्या वर्णन करूँ ? श्रीमद्भागवत (११।६।१६) में कहा गया है—"हे हृषीकेश, आपने त्रिलोकीकी पाप-राशिको धो बहानेके लिए दो प्रकारकी पवित्र नदियाँ बहा रक्खी हैं—एक तो आपकी अमृतमयी लीलासे भरी कथानदी और दूसरी, आपके पाद-प्रक्षालनके जलसे भरी गंगाजी। अतः सत्संगसेवी विवेकीजन कानोंके द्वारा आपकी कथा नदीमें और शरीरके द्वारा गङ्गाजीमें गोता लगाकर दोनों ही तीर्थोंका सेवन करते हैं और अपने पाप-ताप मिटा देते हैं।" कृष्णदास कविराज गोस्वामी भी दृढ़तापूर्वक कहते हैं,—

"भक्त पद-धूलि आर भक्तपद-जल।
भक्तभुक्त-शेष एइ तीन साधनेर बल ॥
एइ तीन-सेवा हैते कृष्ण-प्रेमा हय।
पुनः पुनः सर्वशास्त्रे फुकारिया कय ॥
ताते बार बार कहि, सुन भक्तगन।
विश्वास करिया कर ए तीन-सेवन ॥"
(चैतन्यचरितामृत अन्त्य १६।६०-६२)

अर्थात् भक्त-पदरज, भक्तपदधौत जल और भक्तोंका उच्छिष्ट—ये तीनों भगवद्भजनमें प्रधान सहायक हैं। इन तीनोंका श्रद्धापूर्वक सेवन करनेसे कृष्ण प्रेमकी प्राप्ति होती है। ऐसा सभी शास्त्रोंमें कहा गया है। इसलिए हे भक्तवृन्द ! मैं बार बार आपसे अनुरोध-करता हूँ कि आप लोग विश्वासपूर्वक इन तीनोंका सेवन करें।

श्रीविष्णु और वैष्णवोंका परम पवित्र चरणामृत पान करनेके बाद आचमन नहीं करना चाहिए। इसके सम्बन्धमें शास्त्रका कथन है—

विष्णु पादोदकं पीत्वा भक्तपादोदकं तथा।
य आचमति संमोहाद्ब्रह्महा सनिगद्यते ॥
(गरुड़पुराण)

जो श्रीहरिके और हरिके भक्तोंका चरणामृत पान करनेके बाद अज्ञानवश भी आचमन करते हैं, उनकी गणना ब्रह्मघातियोंमें की जाती है।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिमयूख भागवत महाराज।

○○○○

# जैव-धर्म

( पूर्व प्रकाशित वर्ष १, संख्या ८, पृष्ठ १६० से आगे )

## ( चतुर्थ अध्याय )

### नित्यधर्मका नामान्तर वैष्णवधर्म है

लाहिड़ी महाशय और वैष्णवदासकी कुटियाँ पास ही पास हैं। समीप ही कुछ आम और कटहल-के वृक्ष हैं। चारों ओर छोटे-छोटे सुपारीके वृक्ष शोभा दे रहे हैं। आँगनमें एक बहुत बड़ा गोल चबूतरा है। जिस समय श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारी उस कुञ्जमें रहते थे—यह चबूतरा उसी समयका है। बहुत दिनोंसे वैष्णव लोग उसे 'सुरभि चबूतरा' कहते हैं, उसकी परिक्रमा करते हैं तथा श्रद्धासे उसे प्रणाम करते हैं।

सन्ध्या हो गई है। वैष्णवदास अपनी कुटीमें पत्तोंके आसनपर बैठे हरिनाम कर रहे हैं। कृष्णपक्ष है; धीरे-धीरे रात अधिक अँधेरी हो गई। लाहिड़ी महाशयकी कुटीमें एक टिमटिमाता हुआ दीपक जल रहा है। अकस्मात् उनके दरवाजेके निकट ही सर्प जैसा दिखाई पड़ा। लाहिड़ी महाशयने उसी समय एक लाठी लेकर उस सर्पको मारनेके लिये दीपकको तेज कर दिया। किन्तु दीपक लेकर बाहर आते-आते सर्प गायब हो गया।

लाहिड़ी महाशयने वैष्णवदाससे कहा—'आप जरा सावधान रहें, आपकी कुटीमें एक साँप गया है।'

वैष्णवदास बोले—'आप साँपके लिये इतना घबराते क्यों हैं? आइये, मेरी कुटीमें निर्भय होकर बैठिये।'

लाहिड़ी महाशय उनकी कुटीमें प्रवेशकर एक पत्रासनपर बैठ गये। किन्तु उनका मन अब भी बहुत ही चंचल था। उन्होंने कहा—'महाशय! इस विषयमें हमारा शान्तिपुर अच्छा है। शहरमें कहीं भी साँप, बिच्छूका डर नहीं है। नदियाप्रान्तमें सर्वदा ही साँपका डर बना रहता है। खासकर, गोद्रुम आदि जङ्गल-पूर्ण स्थानोंमें लोगोंका रहना बड़ा खतरनाक है।'

वैष्णवदास बाबाजीने समझाया—'इन विषयोंसे चित्तको चंचल करना उचित नहीं। आपने श्रीमद्-भागवतमें महाराज परीक्षितकी कथा अवश्य ही सुनी होगी। उन्होंने साँपका भय परित्याग कर अचञ्चल चित्तसे श्रीमत् शुकदेवके मुखसे हरिकथामृतका पान करते हुए परमानन्द लाभ किया था। मनुष्यकी चित्-देहमें सर्प अघात नहीं कर सकता। केवल भगवत्कथा विरहरूपी सर्प ही उस देह के लिये व्याघात-जनक है। जड़ शरीर नित्य नहीं है, एक न एक दिन इसे अवश्य ही परित्याग करना पड़ेगा। जड़ देहके लिये केवल शारीरिक कर्म ही विहित हैं। कृष्णकी इच्छासे जब इस देहका पतन होगा, तब किसी भी चेष्टासे इसकी रक्षा न की जा सकेगी। जबतक शरीरके भङ्ग होनेका समय उपस्थित नहीं होता, तबतक सर्पके बगलमें सोनेसे भी वह कुछ नहीं कर सकता। अतएव साँप आदिका भय दूर करनेसे ही वैष्णवनामसे परिचय दिया जा सकता है। इन भयोंसे यदि चित्त चंचल रहा, तो वह श्रीहरिके चरण-कमलोंमें कैसे नियुक्त होगा? अतएव सर्पका भय और भयके कारण सर्पको मारनेकी चेष्टा का अवश्यमेव परित्याग कर देना उचित है।'

लाहिड़ी महाशयने कुछ श्रद्धाके साथ कहा—'आपके साधु वचनोंसे मेरा हृदय निर्भय हो गया अब मैं समझ गया कि हृदयको उन्नत करने पर ही

परमार्थ लाभ किया जा सकता है। गिरि-कन्दराओंमें बहुतसे महात्मा भगवान्‌का भजन करते हैं। वे वहाँ जङ्गली जीव-जन्तुका-भय नहीं करते,बल्कि असत्सङ्ग-के भयसे ही बस्तियोंको छोड़कर जङ्गली जानवरोंके साथ निवास करते हैं।'

बाबाजीने कहा—'हृदयमें भक्तिदेवीका आविर्भाव होनेसे हृदय सहज ही उन्नत हो जाता है। जगत्‌के समस्त जीवोंका प्रियपात्र हुआ जा सकता है। सन्त और असन्त सभी जीव भक्तोंसे प्रीति करते हैं। अतएव मनुष्यमात्रको वैष्णव होना चाहिये।'

यह बात सुनते ही लाहिड़ी महाशयने कहा—'आपने नित्य धर्मके प्रति मेरी श्रद्धा उदय करायी है। मुझे ऐसा लगता है कि नित्यधर्मके साथ वैष्णव धर्म-का कुछ निकटतम सम्बन्ध है। किन्तु नित्यधर्म और वैष्णवधर्मकी एकताको मैं अब भी समझ नहीं पाया हूँ।'

वैष्णवदास बाबाजी कहने लगे—'जगत्‌में वैष्णव धर्मके नामसे दो पृथक्-पृथक् धर्म चलते हैं—पहला शुद्धवैष्णवधर्म और दूसरा विद्ध-वैष्णवधर्म। शुद्ध वैष्णवधर्म तत्त्वतः एक होने पर भी रसकी दृष्टि-से इसके चार भेद हैं—(१) दास्यगत वैष्णवधर्म, (२) सख्यगत वैष्णवधर्म, (३) वात्सल्यगत वैष्णवधर्म और (४) मधुरगत वैष्णवधर्म। वास्तवमें शुद्ध वैष्णवधर्म एक और अद्वितीय है और इसका नाम नित्यधर्म या परधर्म है। 'यज् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति' (क) मुण्डक १/३—यह श्रुतिकीवाणी शुद्ध वैष्णवधर्मको ही लक्ष्य करती है। इसका विस्तारित विवरण आप क्रमशः जानेंगे।

विद्ध-वैष्णधर्म दो प्रकारका होता है—कर्मविद्ध वैष्णवधर्म और ज्ञानविद्ध वैष्णवधर्म। स्मार्त्तमतमें-वैष्णवधर्मकी जितनी पद्धतियाँ हैं—वे सभी कर्म-विद्ध वैष्णवधर्म हैं। इस वैष्णधर्ममें वैष्णवमन्त्रकी दीक्षा होनेपर भी विश्वव्यापी पुरुषरूप विष्णुको कर्माङ्गके रूपमें माना जाता है। इस मतसे विष्णु समस्त देवताओंके नियन्ता होनेपर भी स्वयं कर्माङ्ग और कर्मके अधीन हैं। कर्म विष्णुकी इच्छाके अधीन नहीं, बल्कि विष्णुही कर्मकी इच्छाके अधीन हैं। इस मतके अनुसार उपासना, भजन और साधन—सभी कर्माङ्ग हैं, क्योंकि कर्मकी अपेक्षा कोई भी उच्च तत्त्व नहीं है। जरत्‌मीमांसकों का वैष्णवधर्म इसी प्रकार बहुत दिनोंसे चल रहा है। भारतमें इस मतके बहुतसे लोग अपनेको वैष्णव होनेका अहंकार करते हैं। वे शुद्ध वैष्णवोंको वैष्णव स्वीकार नहीं करना चाहते। यह उनका दुर्भाग्य है।

भारतमें ज्ञान-विद्ध वैष्णव धर्मका भी खूब प्रचार है। ज्ञानी सम्प्रदायके मतसे अज्ञेय ब्रह्म-तत्त्व ही सर्वोच्च तत्त्व है। इनमें निर्विशेष-तत्त्वको प्राप्त करनेके लिए साकार सूर्य, गणेश, शक्ति, शिव और विष्णुकी उपासना करना आवश्यक होता है। ज्ञान पूर्ण हो जानेपर साकार उपास्य दूर हो जाते हैं। अन्तमें निर्विशेष ब्रह्मत्व लाभ होता है। अनेक लोग इस मतको स्वीकार कर शुद्ध वैष्णवोंका अनादर करते हैं। इस पञ्चोपासनामें विष्णुकी जो उपासना होती है उसमें दीक्षा, पूजा आदि सभी कुछ विष्णु विषयक होता है। कहीं-कहीं पर उनकी उपासना राधा-कृष्ण विषयक होने पर भी, वह शुद्ध वैष्णव धर्म नहीं है।

इस प्रकार विद्ध-वैष्णव धर्मोंको पृथक् कर देने पर जिस शुद्ध वैष्णव-धर्मका प्रकाश होता है, वही प्रकृत वैष्णवधर्म है। कलिके प्रभावसे कितने ही लोग शुद्ध वैष्णव धर्मको न समझ सकनेके कारण विद्ध-वैष्णव धर्मको ही वैष्णव धर्म समझते हैं।

श्रीमद्भागवतके अनुसार मनुष्यमें परमार्थकी प्रवृत्तियाँ तीन प्रकारकी होती हैं—(१) ब्राह्म-प्रवृत्ति,

(क) जिनको विशेषरूपसे जाननेसे सब कुछ जानना हो जाता है।

(२) पारमात्म-प्रवृत्ति, (३) भागवत-प्रवृत्ति। ब्राह्म-प्रवृत्ति द्वारा निर्विशेष ब्रह्ममें किसी-किसीकी रुचि होती है। उन लोगोंने जिस उपायका अवलम्बन कर निर्विशेष होनेकी चेष्टा की, कुछ कालके अनन्तर वही पञ्चोपासनाके नामसे विख्यात हो गया।

पारमात्म प्रवृत्ति द्वारा सूक्ष्म परमात्म स्पर्शी योग-तत्त्वमें भी किसी-किसीकी रुचि होती है। वे लोग जिस उपायका अवलम्बन कर पारमात्म समाधिकी आशा करते हैं, वे क्रियाएँ कर्म-योग तथा अष्टांग-योगके नामसे विख्यात हैं। इस मतके विष्णु मंत्र, दीक्षा, विष्णु पूजा और ध्यान आदि सभी कर्माङ्ग हैं। इनमें कर्मविद्ध-वैष्णव धर्मका उदय होता है।

भागवत-प्रवृत्ति द्वारा शुद्ध सविशेष भगवत्स्वरूपके अनुगत भक्ति-तत्त्वमें सौभाग्यशाली जीवोंकी ही रुचि होती है। इन लोगोंकी भगवदाराधना आदि क्रियाएँ कर्म अथवा ज्ञानके अंग नहीं हैं—शुद्ध भक्तिके अंग हैं। इस मतका वैष्णव-धर्म ही शुद्ध वैष्णव-धर्म है। श्रीमद्भागवतका कथन है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज् ज्ञानमद्वयं।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥ (क)
(श्रीमद्भा० १।२।११)

देखिए, ब्रह्म और परमात्मा भेदोंवाला भगवत् तत्त्व ही समस्त तत्त्वोंका चरम है। भगवत्तत्त्व ही शुद्ध विष्णुतत्त्व है। उस तत्त्वके अनुगत जीव ही शुद्ध जीव है और उनकी प्रवृत्तिका नाम ही 'भक्ति' है। हरिभक्ति ही शुद्ध वैष्णवधर्म, नित्यधर्म, जैवधर्म, भागवत् धर्म, परमार्थ और परधर्मके नामसे विख्यात है। ब्राह्मप्रवृत्ति और पारमात्मप्रवृत्तिसे जितने प्रकारके धर्म उत्पन्न हुए हैं, वे सभी नैमित्तिक हैं—नित्य नहीं हैं। निर्विशेष ब्रह्मानुसंधानमें भी निमित्त है, अतएव वह भी नैमित्तिक है—नित्य नहीं। जड़विशेष अर्थात् जड़ पदार्थोंमें आबद्ध होकर जो जीव उस बन्धनसे मुक्त होनेके लिये प्रयत्न करते हैं, वे जड़-बन्धनको निमित्त कर निर्विशेषगतिके अनुसंधानरूप नैमित्तिक धर्मका आश्रय ग्रहण करते हैं। अतएव ब्राह्म-धर्म नित्य नहीं है। जो जीव समाधि-सुखकी कामनासे पारमात्म धर्मका अवलम्बन करते हैं, वे जड़ीय सूक्ष्म मुक्तिको निमित्त बनाकर नैमित्तिक-धर्मका अवलम्बन करते हैं। अतएव पारमात्म धर्म भी नित्य नहीं है। केवल विशुद्ध भागवत धर्म ही नित्य है।'

यहाँ तक सुनकर लाहिड़ी महाशयने कहा,—'महाशय! कृपा कर मुझे शुद्ध वैष्णव धर्मका उपदेश करें। मैं इस अधिक उम्रमें आपके चरणोंका आश्रय लेता हूँ, कृपया आप मुझे ग्रहण करें। मैंने सुना है कि असद्गुरु द्वारा पहलेसे शिक्षा और दीक्षा ग्रहण करने पर भी सद्गुरु मिलनेपर पुनः शिक्षित और दीक्षित होना उचित है। कई दिनोंसे आपके सदुपदेशोंको सुनकर वैष्णव धर्मके प्रति मेरी श्रद्धा हो गयी है। इस समय कृपाकर पहले वैष्णवधर्मकी शिक्षा दें और अंतमें दीक्षा देकर मुझे पवित्र करें।'

बाबाजीने कुछ व्यस्त होकर कहा,—'महाशय! मैं यथाशक्ति आपको शिक्षा तो दूँगा, किन्तु मैं दीक्षा गुरु होनेके योग्य नहीं। जैसा भी हो, इस समय आप शुद्ध वैष्णवधर्मकी शिक्षा ग्रहण करें।

संसारके आदि गुरु श्रीश्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने बतलाया है कि वैष्णव-धर्ममें तीन तत्त्व हैं—(१) सम्बन्ध तत्त्व, (२) अभिधेय तत्त्व और, (३) प्रयोजन तत्त्व। इन तीनों तत्त्वोंको जानकर जो यथायथ आचरण करते हैं वे ही शुद्ध वैष्णव या शुद्ध-भक्त हैं।

सम्बन्ध तत्त्वके अन्तर्गत तीन विषयोंका अलग-अलग निरूपण किया गया है। जड़ जगत् या मायिक

(क) तत्त्वविद् वास्तव वस्तुको 'अद्वयज्ञान' कहते हैं। उसी अद्वय-ज्ञान-तत्त्व वस्तुको कोई 'ब्रह्म' कोई 'परमात्मा' और कोई 'भगवान्के' नामसे पुकारते हैं।

तत्त्व, जीव या अधीन तत्त्व, और भगवान् या प्रभु तत्त्व। भगवान् एक और अद्वितीय हैं, वे सर्वशक्ति-सम्पन्न, सर्वाकर्षक, ऐश्वर्य और माधुर्यके एक मात्र निलय तथा जीव शक्तिके आश्रय हैं। माया और जीवोंके एकमात्र आश्रय होकर भी वे सुन्दररूपमें एक परम स्वतंत्र-स्वरूप हैं। उनके अंगोंकी प्रभा दूरसे निर्विशेष-ब्रह्मके रूपमें प्रतिभात होती है। उनकी ऐशी शक्ति जीव और जगत्की सृष्टि कर अपने अंशसे परमात्माके रूपसे जगत्में प्रवेश करती है। यही परमात्म या ईश्वर तत्त्व है। ऐश्वर्य प्रधान प्रकाशमें वे परव्योममें वै—कुंठमें नारायण हैं और वेही अपने माधुर्य-प्रकाशमें वृन्दावनमें गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्ण-चन्द्र हैं। उनके प्रकाश और विलास नित्य और अनन्त हैं। उनके समान कोई या कुछ भी नहीं है, उनसे अधिक अर्थात् श्रेष्ठ होनेकी तो बात ही क्या है। उनकी पराशक्ति द्वारा उनके समस्त प्रकाश या विलास प्रकटित होते हैं। पराशक्तिके अनेक विक्रम हैं, जिनमेंसे जीवों के निकट केवल तीन विक्रम परिचित हैं। पहला चिद्-विक्रम—जिसके द्वारा उनकी लीला-सम्बन्धी सब कुछ सिद्ध होता है, दूसरेका नाम जीव-विक्रम या तटस्थ-विक्रम है जिससे अनन्त जीवोंका उदय और अवस्थान होता है। और तीसरेका नाम माया-विक्रम है—जिसके द्वारा जगत्की समस्त मायिक वस्तु, काल और कर्मकी सृष्टि हुई है। जीवके साथ भगवान्का, भगवान्के साथ जीव और जड़का और जड़के साथ भगवान् और जीवका जो सम्बन्ध है—उसे सम्बन्ध तत्त्व कहते हैं। सम्बन्ध तत्त्वको पूरी तरहसे जान लेने पर सम्बन्ध ज्ञान होता है। सम्बन्ध ज्ञानसे रहित व्यक्ति किसी प्रकार भी शुद्ध वैष्णव नहीं हो सकते।'

लाहिड़ी महाशयने कहा,—'मैंने वैष्णवोंसे सुना है कि वैष्णव केवल भावुक होते हैं, उन्हें ज्ञानकी आवश्यकता नहीं होती। यह बात कहाँ तक ठीक है? मैंने अबतक हरिनाम संकीर्त्तनमें भावको ही संग्रह करनेका प्रयत्न किया है, किन्तु ज्ञानके लिए तो कोई चेष्टा नहीं की।'

बाबाजीने कहा,—'भावका उदय होना ही वैष्णवोंके लिए परम फल है। किन्तु भाव शुद्ध होना चाहिए। जो लोग अभेद ब्रह्मानुसंधानको परम फल जानकर साधन कालमें भावकी शिक्षा ग्रहण करते हैं, उनका भाव और उनकी चेष्टा शुद्धभाव नहीं है-शुद्ध भावका अनुकरण मात्र है। शुद्ध भावका एक बिन्दुभी जीवको चरितार्थ कर देता है। किन्तु ज्ञानविद्ध भावुकताको जीवोंके लिए केवल उत्पात ही समझना चाहिए। जिनके हृदयमें अभेद ब्रह्मभाव है, उनका भक्तिभाव केवल लोक वंचना मात्र है। अतएव शुद्ध भक्तोंके लिए सम्बन्ध ज्ञान-अत्यन्त आवश्यक है।'

लाहिड़ी महाशयने श्रद्धाके साथ पूछा,—'ब्रह्मकी अपेक्षा भी क्या कोई उच्च-तत्त्व है? भगवान्से यदि ब्रह्मकी प्रतिष्ठा है तो ज्ञानी लोग ब्रह्मको परित्यागकर भगवान्का भजन क्यों नहीं करते?'

बाबाजीने कुछ हँसकर उत्तर दिया,—'ब्रह्मा, सनकादि चारों कुमार, शुक, नारद और देवदेव महादेव—सभी लोगोंने अन्तमें भगवान्के चरणोंमें ही आश्रय लिया।'

लाहिड़ी महाशयने शंकाकी,—'भगवान्का रूप है। अतएव सीमाविशिष्ट होकर भी वे असीम-ब्रह्मकी प्रतिष्ठा कैसे हो सकते हैं?'

बाबाजीने उनकी शंकाका समाधान करते हुए उत्तर दिया,—'जड़ जगत्में आकाश नामक एक वस्तु है। वह भी असीम है। ऐसी दशामें ब्रह्मके असीम होनेसे आकाशकी अपेक्षा ब्रह्मका अधिक माहात्म्य ही क्या रहा? भगवान् अपने अङ्गकान्ति-रूप शक्ति द्वारा असीम होकर भी एकही समय युगपत् स्वरूपवान् भी हैं। ऐसी और किसी वस्तुको देखा है? इसी अद्वितीय स्वभावके कारण भगवान् ब्रह्मतत्त्वकी अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं। उनका स्वरूप परमाकर्षक तो है ही अधिकन्तु उनमें सर्वव्यापित्व, सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तित्व, परमदया, और परमानन्द भी पूर्णरूपेण विराजमान हैं। ऐसा सर्वगुण-सम्पन्न स्वरूप उत्तम है अथवा

एक अज्ञात सर्वव्यापी अस्तित्व—जिसमें कोई गुण नहीं, कोई शक्ति नहीं ? वास्तवमें ब्रह्म भगवान्‌का एक निर्विशेष भाव मात्र है। भगवान्‌में निर्विशेषत्व और सविशेषत्व—दोनों ही सुन्दर रूपमें एकही समय अवस्थित हैं। ब्रह्म उनका एक अंश मात्र है। निराकार, निर्विकार, निर्विशेष, अपरिज्ञेय और अपरिमेय आदि भाव अदूरदर्शी व्यक्तियोंको प्रिय होता है। किन्तु जो सर्वदर्शी हैं, वे पूर्ण तत्त्वके अतिरिक्त और किसीमें मन नहीं लगाते। वैष्णव निराकार तत्त्वको विशेष श्रद्धा नहीं कर सकते। क्योंकि वह नित्य-धर्म और शुद्ध-प्रेमका विरोधी है। परमेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र सविशेष और निर्विशेष दोनों तत्त्वोंके आश्रय है, वे परमानन्दके समुद्र है तथा समस्त शुद्धजीवोंके आकर्षक हैं।'

लाहिड़ी—'श्रीकृष्णका जन्म है, कर्म है और शरीर त्याग है—तब उनकी मूर्त्ति नित्य कैसे हो सकती हैं ?'

बाबाजी—'श्रीकृष्ण मूर्ति सच्चिदानन्द है—उसमें जड़ सम्बधीय जन्म, कर्म और देह त्याग नहीं हैं।'

लाहिड़ी—'तब महाभारतादि ग्रन्थोंमें वैसा वर्णन क्यों दिया गया है ?'

बाबाजी—'नित्य तत्त्व वाणीके अतीत होनेके कारण उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। शुद्ध जीव अपने चिद्विभागमें कृष्णमूर्त्ति और कृष्ण-लीला-का दर्शन करता है। वाणी द्वारा व्यक्त किये जाने पर वह तत्त्व जड़ीय इतिहासकी तरह वर्णित हो जाता है। जो लोग महाभारत आदि ग्रन्थोंका सार ग्रहण करनेमें समर्थ हैं, वे कृष्ण-लीला आदिका जैसा अनुभव करते हैं, जड़ बुद्धि वाले उन्हीं वर्णनों-को दूसरी तरह अनुभव करते हैं।'

लाहिड़ी—'कृष्ण मूर्त्तिका ध्यान करनेपर हृदयमें देश और कालसे परिच्छिन्न एक भाव उदित होता है। उसे पारकर श्रीमूर्त्तिका ध्यान कैसे हो सकता है ?'

बाबाजी—'ध्यान मनका कर्म है। मन जब तक शुद्ध चिन्मय नहीं होता, ध्यान तब तक कभी चिन्मय नहीं हो सकता। भक्ति-भावित मन अर्थात् भक्ति द्वारा शुद्ध किया हुआ मन क्रमशः चिन्मय हो जाता है, उस मनसे जो ध्यान होता है वह अवश्य चिन्मय होता है। भजनानन्दी वैष्णव लोग जब कृष्णनाम लेते है, उस समय जड़ जगत् उनका स्पर्श नहीं करता। वे चिन्मय हैं। चिन्मय जगत्‌में रहकर कृष्ण-के दैनन्दिन लीलाका ध्यान करते हैं तथा अंतरंग सेवा सुखका भोग करते हैं।'

लाहिड़ी—'कृपाकर मुझे चिद् अनुभव प्रदान करें।'

बाबाजी—'समस्त जड़ीय संदेह और कुतर्कका परित्याग कर जब आप निरन्तर नामकी आलोचना करेंगे; तब शीघ्र ही कुछ दिनोंमें चिद्‌अनुभव स्वयं उदित हो जायगा। जितना अधिक कुतर्क करेंगे, मनको उतना ही अधिक जड़ बन्धनमें आबद्ध करते जाएँगे। और जितना ही अधिक नाम-रसका उदय करायेंगे—जड़बन्धन उतना ही शिथिल होता जायगा और हृदयमें चित् जगत् प्रकाशित होगा।'

लाहिड़ी—'मैं चाहता हूँ कि आप कृपाकर मुझे बतला दें कि चिद्‌अनुभव क्या चीज है ?'

बाबाजी—'मन वाक्यके साथ उस तत्त्वको न पाकर लौट आता है। केवल चिदानन्दके अनुशीलन-से ही वह पाया जाता है। आप वितर्क छोड़कर कुछ दिन नाम कीजिए। नामके प्रभावसे आपके सारे संदेह अपने आप दूर हो जायेंगे। और आप इस विषयमें किसीसे भी कुछ न पूछें।'

लाहिड़ी—'मैंने जानलिया कि श्रीकृष्णमें श्रद्धाकी भावना रखते हुए उनका नाम-रसकापान करनेसे समस्त परमार्थ लाभ किया जा सकता है। मैं सम्बन्ध ज्ञान-को अच्छी तरह समझकर पीछे नाम ग्रहण करूँगा।'

बाबाजी—'यह सबसे अच्छी बात है। आप सम्बन्ध ज्ञानको अच्छी तरहसे अनुभव करें।'

( क्रमशः )

# श्रीव्रज-मण्डलकी परिक्रमा और उर्जव्रत

[ पूर्व प्रकाशित वर्ष १, संख्या ८, पृष्ठ १६२ से आगे ]

१८-११-५५—दोपहरमें प्रसाद-सेवाके बाद श्रीकेशवजी गौड़िय मठसे श्रीवृन्दावन गमन।

१९-११-५५—वृन्दावनकी पंचकोसी परिक्रमा। गोपेश्वर शिव, वंशीवट, केशीघाट, जमुनापुलिन आदिके दर्शन।

२०-११-५५—श्रीराधामदनमोहन, सनातन गोस्वामीकी समाधि, इमलीतला, निकुञ्जवन, निधुवन, श्रीराधागोविन्ददेव, श्रीराधाश्याम सुन्दर, श्रीवृन्दावन चन्द्र, श्रीराधादामोदर, श्रीलभूगर्भ गोस्वामीकी समाधि, श्रीलकृष्णदास कविराज गोस्वामीकी समाधि, श्रीजीवगोस्वामीकी समाधि, श्रीरूपगोस्वामीकी समाधि और उनकी भजनकुटी, श्रीराधाविनोद, श्रीगोकुलानन्द, श्रीलोकनाथ गोस्वामीकी समाधि श्रीनरोत्तमठाकुरकी समाधि, और श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकी समाधिके दर्शन।

२१-११-५५—जमुनाके दूसरे पार बेलवनका दर्शन, वहाँसे फिर मानसरोवरका दर्शकर वृन्दावन लौटना।

२२-११-५५—वृन्दावनसे भातरोल ( ब्राह्मण पत्नियोंके द्वारा कृष्णको भोजन सामग्री अर्पण करनेका स्थान ) और अक्रूर घाटका दर्शनकर मथुरामें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें लौटना।

२३-११-५५—मोटर द्वारा गोकुल पहुँचना, वहाँकी परिक्रमा करते हुए ब्रह्माण्डघाट, यमलार्जुनभञ्जन स्थली, योगमाया और प्राचीन नन्दालयके दर्शन। लौटते समय रास्तेमें रावलग्रामका ( श्रीमतीराधारानीका जन्मस्थान) दर्शनकर फिर मथुरा केशवजी गौड़ीय मठमें पहुँचना।

२६-११-५५—आज उत्थान एकादशीके उपवासके दिन श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराजके तिरोभाव तिथिके अवसरपर सन्ध्याकी आरतीके बाद श्रीबाबाजीमहाराजके माहात्म्यका वर्णन करनेके उद्देश्यसे एक सभाका आयोजन किया गया। जिसमें श्रीश्रीआचार्यदेवके सभापतित्वमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति सर्वस्व गिरि महाराज तथा श्रीमद्भक्ति भूदेव श्रौति महाराजके भाषण हुए। पीछे श्रीलआचार्यदेवका दीक्षान्त भाषण हुआ। दो दिन लगातार संध्याके समय इनके भाषण हुए।

२९-११-५५—क्षौरकार्यादिके बाद व्रतका उद्यापन कर यात्रियोंका ७/२० मिनटपर तूफान एक्सप्रेसके रक्षित (Reserve) गाड़ीमें बैठकर मथुरासे हावड़ाके लिये रवाना होना। सभी यात्री यहाँ एक महीने तक सत्सङ्गमें रहकर परमार्थ अनुशीलनके लिये अपने २ सौभाग्यको हजारों मुखोंसे प्रशंसा करते-करते श्रीधामसे सजल नयनोंसे विदा हुए। निष्ठुर ट्रेन उनकी अतृप्त आशाको चूर्ण-विचूर्ण करती हुई उन्हें फिर माया राज्यकी ओर ले चली। किन्तु यात्रियोंका धामकेप्रति तीव्र आकर्षण रहनेके कारण ट्रेनके निर्दिष्ट स्थान पहुँचनेमें ढ ई घंटे देर हो गई। खैर, तारीख ३०-११-५५ को गाड़ीसे उतरकर सभी अपने-अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ फिर एकत्र मिलित हुए।

( श्रीगौड़ीय पत्रिकासे उद्धृत )

---

# आसाम--प्रदेशमें प्रचार

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता और सभापति परिव्राजकाचार्यवर्य १०८ श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराजजी आसाम-प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें श्रीमन्महाप्रभुके प्रेमधर्मका एक महीने तक प्रचार कर गत १० माघ, २४ जनवरी, मंगलवारको श्रीधाम नवद्वीप होते हुए श्रीश्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चिनसुरा में पहुँच गये। उनके साथ समितिके प्रसिद्ध प्रचारक त्रिदण्डि-स्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज, श्रीपाद सुदामसखा ब्रह्मचारी, श्रीगोराचाँद ब्रह्मचारी तथा श्रीस्वाधिकारानन्द ब्रह्मचारी भी गये थे। इस प्रचार कार्यमें गोलोकगंजके निवासी श्रीयुत, देवेन्द्रनाथ दासाधिकारी, उनकी धर्मपत्नि श्रीमती सुचित्राबाल देवी, छोकापाड़ा निवासी श्रीयुत वसन्तकुमार दास तथा श्रीपाद रमेशचन्द्र दास आदिकी चेष्टा और सहोयोग विशेष सराहनीय है।

---